निबन्धादर्श

अर्थात्

हिन्दी में निबन्ध लिखना सिखाने की आदर्श पुस्तक ।

(३० चुने हुए नमूने के लेखों सहित)

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

लेखक

गोकुलचन्द्र शर्म्मा बी. ए.

प्रकाशक

साहित्य-सदन, अलीगढ़ ।

प्रथम संस्करण

प्रकाशक,
शिव चन्द्र शर्मा,
सञ्चालक, साहित्य-सदन,
अलीगढ़ ।

मुद्रक,
राजेन्द्र बिहारी लाल,

पहली बात

इस पुस्तक का उद्देश विद्यार्थियों के सामने निबन्ध का आद
ना है। इस भार को अपने शिर पर ले चुकने के पश्चात् ह
कठिनाई का सामना करना पड़ा। निबन्ध का विषय छो
ाओं से लेकर कालिज तक रहता है। भिन्न भिन्न श्रेणी
ार्थियों की रुचि भी अलग अलग होती है। अध्यापकों का म
इस विषय में एक नहीं। किसी ने चाहा कि लेख छोटे छो
किसी ने चाहा बड़े बड़े हों। किसी ने कहा परीक्षा ही प्रधा
रखा जाय, किसी ने कहा वास्तविक योग्यता को महत्
ा जाय। सारांश, जितने मुँह उतनी बातें सुनने को मिलीं।

स्कूल के विद्यार्थियों को अपने भावों के प्रकाशन का ढंग आ
हिए। उनकी भाषा शुद्ध और उसका प्रयोग ठीक होना चाहि
ों की गूढ़ता, और शैली की विचित्रता उनकी ज्ञान-वृद्धि
साथ स्वयं बढ़ती जायगी। आदर्श लेख का अभिप्राय य
ापि नहीं कि उसे रट लिया जाय। परीक्षा हमारी शिक्षा
श नहीं, वह केवल योग्यता की जाँच का एक साधन है। य

ऊँचा निशाना लेने से ही हमारा तीर वहाँ तक पहुँच सकता है। इसलिए लक्ष्य सदैव ऊँचा होना चाहिए। आदर्श का उच्च होना पहली बात है। तभी तो उसका अनुसरण करने से लाभ हो सकता है। इसके अतिरिक्त लेखों की कोई सीमा नहीं। एक ही बात पर कई प्रकार से लेख लिखा जा सकता है, एक ही दृश्य को कितनी ही दृष्टियों से देखा जा सकता है। इसलिए किसी लेख को रटना न केवल व्यर्थ ही है, वरन् हानिकारक भी है। उससे हमारी बुद्धि का विकास रुकता है। इसके विपरीत, ऊँचे आदर्शों को सामने रखने से उसका थोड़ा भी अंश हम ग्रहण कर सकें तो भी हमारा ज्ञान बढ़ता है।

इन बातों को ध्यान में रखकर ही हमने इस पुस्तक को लिखने की चेष्टा की है। हम मानते हैं कि योग्य शिक्षक ही लेखक का सबसे अच्छा आदर्श है, परन्तु वह आदर्श सर्वत्र मिलना दुर्लभ है। और, बिना नमूने के विद्यार्थियों के लिए आगे बढ़ना भी बड़ा दुष्कर है। फिर, भाषा का प्रयोग बिना अच्छे अच्छे लेखकों की रचना के पढ़े कदापि नहीं आ सकता। यही कारण है कि बड़े बड़े विद्वानों के सुन्दर प्रयोग हमारी जीभ पर चढ़ जाते हैं, और उनसे हमारी भाषा में प्रौढ़ता आती है।

इस पुस्तक के हमने दो विभाग किये हैं। विचार-भाग में रचना

ों का संग्रह है। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए ४५ लेखों क
ा भी दे दिया गया है। यों तो सहस्रों लेख लिखकर भी य
ं कहा जा सकता कि सब की इच्छा की पूर्ति हो जायगी, परन्
न्ध की दिशा दिखाने में इस पुस्तक से समुचित सहायत
ेगी यह हमारी धारणा है।

कुछ लेख इस पुस्तक में छः या सात पृष्ठों तक में आये हैं
लिए वे विद्यार्थियों के लिए बहुत लम्बे समझे जा सकते हैं
ु, वर्णन को पूरा करने की दृष्टि से ही हमने उन्हें लिखा है
के वर्णन को कई भागों में बाँट देने से भिन्न भिन्न प्रकार
र्णनों के छोटे छोटे लेख बन सकते हैं। लेख की सीमा को छोट
के एक ही लेख में कई लेखों की सामग्री टटोलना पाठकों क
म है। जैसे; भोजन सामने होने पर अपने अनुकूल ग्रास बना
नेवाले का ही काम है। आशा है इस दृष्टि से हमारे पाठ
हें अनुचित लम्बा न समझेंगे।

रचना की भाषा के नियम, मुहाविरों के प्रयोग, चिह्नों
जना आदि पर इस पुस्तक में कुछ नहीं लिखा गया। ऐसा कर
पुस्तक का आकार बढ़ जाने का भय था, और एक ही जग
ानुमती का-सा कुनबा जोड़ना हमें ठीक भी नहीं जँचा।

संभव है कहीं कहीं किसी का हमसे मत-भेद हो। जैसे, 'क़लम की अपेक्षा हमने संस्कृत का शब्द 'कलम' ही अच्छा समझा है।

विचार-भाग में निबन्ध की भाषा और शैली के विषय में हमने अँगरेज़ी की पुस्तकों से बहुत बड़ी सहायता ली है। उसके लिए उनके लेखकों के प्रति हम विनीत भाव से कृतज्ञता प्रकाश करते हैं।

छोटा भी आदर्श सामने रखना सहज काम नहीं। अपनी त्रुटियों की ओर देखकर हमें इस विषय में सङ्कोच भी हुआ। परन्तु, विद्यार्थियों के आग्रह तथा उनकी सेवा की पवित्र प्रेरणा से हमने इस कर्तव्य को पालन करने का साहस किया है। इसमें हमें कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय तो पाठकों के ही हाथ है। परन्तु, निबन्ध की दिशा दिखाने और पवित्र भावों को उकसाने में यदि इस पुस्तक के द्वारा हमसे कुछ भी सेवा हो सकी हो, तो हम अपने को धन्य मानेंगे।

साहित्य सदन, अलीगढ़।
२९ जनवरी, १९२७ ई०

गोकुलचन्द्र शर्म्मा।

विषय-सूची

१-विचार-भाग

२—लेख-भाग

ॐ

निबन्धादर्श

(विचार-भाग)

प्रवेश

णी हमारे हृत्कमल की सौरभ है। हमारे मन रूपी कृष्ण क
ली है। उसकी स्वर-लहरी में विश्व-सङ्गीत का सन्देश गूँज र
वह हमारे मुख-मण्डल की आभा; हमारे भाव-मानस की क
ानी है। नीर-क्षीर का विवेक वही करती, और हमारे गु
गुण की धरती पर विचरती है। मानव-जाति की भाषा के
वही हमारी सभ्यता तथा संस्कृति की जननी है। उसका उज्ज्व
और विकसित वदन ही हमारा ध्येय तथा गेय है।

हमारे मनोभावों की अभिव्यक्ति का साधन वाणी ही है
लिए हमें संसार के सामने अपने को अपने निर्मल रूप में रख

था लाघव प्रकट होता है; वे ही हमारी पुण्य-प्रतिष्ठा के जनक
ाते हैं। शब्दों की शक्ति अपार है। इसी के बल से भगवान् वेद-
ास, वाल्मीकि, पतञ्जलि, कणाद, कालिदास, तुलसी, शेक्सपियर
ादि ने मानव-समाज का अनन्त उपकार किया। भाव-सुरसरी
ी धारा को जिधर चाहे उधर बहा ले जाना शब्द-भगीरथ का ही
ाम है। अतएव शब्द-शक्ति की संप्राप्ति भगीरथ-परिश्रम के बिना
हीं हो सकती। धैर्ययुक्त तपस्या से ही वाणी प्रसन्न होती; वाणी
ी प्रसन्नता से ही निर्मल ज्योति मिलती; और तभी विविध प्रबन्ध
ूझते हैं।

निबन्ध हमारे मनोभावों की प्रतिमूर्ति होता है, जिसे हम
लिखित वाणी द्वारा व्यक्त करते हैं। यदि उसीको हम कथित वाणी
ारा प्रकट करें, तो वह भाषण अथवा व्याख्यान कहा जाता है।
जस प्रकार किसी का चित्र उतारते समय फ़ोटो का शीशा जितना
ाधिक निर्मल होगा चित्र भी उतना ही स्पष्ट उतरेगा, उसी प्रकार
मारे हृदय के शीशे में भी जितनी अधिक विमलता होगी उतने
ी अधिक स्पष्ट रूप में हमारे भाव चित्रित हो सकेंगे। इसीलिए
निबन्ध में लेखक के भावों का फ़ोटो रहता है। और भावों की
गहराई अथवा उथलापन प्रत्येक व्यक्ति की अलग सम्पत्ति है—
उसका सम्बन्ध अपने अपने चरित्र से है। जिसके चरित्र में
जितनी ऊँचाई है उसके भाव उतने ही ऊँचे, और जितनी नीचाई

स्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस के प्राणस्वरूप अयोध्या
ोपान के आदि में लिखा है,—

"श्रीगुरु-चरन-सरोज-रज, निज मन-मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि॥"

खिए, आचार्य तुलसीदास किस प्रकार अपने मन के शीशे को
रु के चरणों की धूल से निर्मल करके मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान
मचन्द्र का 'विमल यश' वर्णन करने चले हैं। इसी प्रकार हमारी
वना चाहे छोटी हो चाहे बड़ी, हमें अपना 'मन-मुकुर' निर्मल
रके अपने भाव व्यक्त करने चाहिए। हम जो कुछ लिखें उसे
ढ़नेवाले भी वही समझें जो कि हमारा अभिप्राय है। आरम्भ में
इस सच्चे मार्ग पर चलने से परिश्रमी लेखक लिखते लिखते
फल-मनोरथ हो सकता है।

साधन

रुड़ हवा से भी अधिक वेग से जहाँ चाहे वहाँ जा सकता है, यह
ानकर क्या चींटियों को अपना मन्द परिश्रम छोड़ देना चाहिए
हीं, प्रकृति ने न तो सब को एक-सी शक्ति ही दी है, और न वह
व से समान कार्य की आशा ही करती है। अपनी अपनी शक्ति के
ानुसार काम करना ही प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। अच्छे

प्रकृति का अटल नियम है कि वह जीवमात्र को ज्ञात
ज्ञात की ओर ले जाती है, अर्थात् हम जो कुछ जानते हैं उस
सहारे से वह हमें अनजानी बातों का बोध कराती है। य
सर्गिक नियम निबन्ध लिखना सीखने की कुञ्जी है। बच्चा ज
दा होता है तब वह बोलना नहीं जानता, और न अपनी दृष्टि
सी एक पदार्थ पर जमा सकता है। संसार में आँख खोलते
ह चकित होकर इधर उधर देखता है। समय बीतने पर धीरे धी
ब कुछ सीख लेता है। ठीक यही दशा नौसिखिये लेखक की हो
। निबन्ध लिखना सीख लेना एक दिन का काम नहीं। भा
जते मँजते ही मँजती है, और भाव उठते उठते ही उठते हैं
न्तु, यदि हमारे ज्ञानार्जन के द्वार —हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ— सचे
हैं तो हमारा ज्ञान-भण्डार स्वाभाविक रूप से ही बहुत कुछ बढ़
इता है।

निबन्ध की सामग्री जुटाने का सबसे पहला साधन हमा
ानेन्द्रियाँ हैं, जो जन्म से ही हमारा साथ देती हैं। उनमें
आँख सब से प्रधान है। आँख के ही द्वारा हम प्रकृति के अन
ौन्दर्य का अवलोकन करते, उसे हृदयङ्गम करते, और मस्ति
तन्तुओं द्वारा उसका प्रभाव स्मरण-शक्ति को सौंपते हैं। सुनन
घूना, चखना और छूना भी अनेक प्रकार से हमें पदार्थों
ण-बोध कराते हैं। इसलिए, प्रति क्षण हमारी आँखें खुली

होगा। जब तक हमें स्वयं किसी बात का स्पष्ट बोध न हो हम दूसरे को किस प्रकार उसे समझा सकते हैं? इस प्रकार बारीकी से देखने से हमारा ध्यान भी एक ओर रहता, और हमारी मेधा (धारणावती बुद्धि) भी विकसित होती है। जब तक हम ध्यान-पूर्वक किसी पदार्थ का सूक्ष्म निरीक्षण न करें हमारे लिए उसका परिज्ञान होना असम्भव है।

बाहरी जगत् को हम जितना अधिक देखें-भालेंगे उतना ही अधिक हमारा ज्ञान का गोला बढ़ता जायगा— उसकी परिधि में भिन्न भिन्न विषयों का समावेश होता जायगा। इसलिए पर्यटन करना ज्ञानार्जन का दूसरा परमावश्यक साधन है। स्थान स्थान में घूमने फिरने से हमारे ज्ञान-कोष में जो जो नई बातें बढ़ती हैं, वे हमारी निज की प्राप्त की हुई होती हैं। उनके लिए पुस्तक पढ़ने, अथवा गुरु की सेवा में समय बिताने की आवश्यकता नहीं होती। बीच का यह समय बचने के साथ साथ उन बातों का प्रभाव भी हमारी स्मरण-शक्ति पर चिर-स्थिर रहता है। हम पदार्थों के रूप को ज्यों का त्यों समझ लेते हैं। उदाहरण के लिए; जिस मनुष्य ने कभी पहाड़ अथवा समुद्र नहीं देखा है, उसे अनेक नमूने दिखाने तथा सरल से सरल ढंग से समझाने पर भी उनका यथार्थ बोध नहीं हो सकता। हिम से ढकी हुई और आकाश को छूती

कानों द्वारा किस प्रकार हो सकता है ? वह आँख ही का काम है। और, बहुत से दृश्य तो ऐसे होते हैं कि उनका सम्बन्ध देखने ही से है; वे वर्णन से परे हैं। वहाँ तो "गिरा अनयन नयन बिनु बानी", ही कहना पड़ता है। सच तो यह है कि पर्यटन करने से जो सहायता हमारे भावों के विकास और कल्पना की उड़ान को मिलती है वह और किसी तरह मिल नहीं सकती। इस व्यावहारिक ज्ञान द्वारा हमारा अनुभव दिन पर दिन पुष्ट और विस्तृत होता जाता है। हमें निरीक्षण करने के एक से एक अनूठे अवसर प्राप्त होते हैं। हृदय में आनन्द की हिलोरें उठतीं, और हमारा जीवन सुखमय बनाती हैं। सांसारिक पदार्थों का जीता जागता चित्र हमारे सामने खड़ा हो जाता, और सूक्ष्म निरीक्षण के द्वारा जीवन-रहस्य के पट भी हमारी आँखों के सामने खुल जाते हैं।

भ्रमण करने के साधन सब को सुलभ नहीं। उनके लिए धन चाहिए, अवकाश चाहिए, साहस चाहिए, और चाहिए साथियों का सुयोग। परन्तु, छोटी छोटी यात्राएँ— मेले प्रदर्शनी आदि के अवसर का उपयोग सुगमता से किया जा सकता है। जिनके पास इन साधनों का अभाव अथवा कमी है, उनके लिए तीसरा साधन स्वाध्याय है। अच्छे अच्छे ग्रन्थों का पढ़ना केवल उन्हीं के लिए आवश्यक नहीं, जिनको कि भ्रमण करने का अवसर प्राप्त नहीं

पहलुओं से किसी पदार्थ की जाँच पड़ताल के नये नये पन्थ सूझते, और अपने भावों को व्यक्त करने का उत्साह उत्पन्न होता है। परन्तु स्वाध्याय के लिए भी बहुत सतर्क होकर आगे बढ़ना चाहिए। आजकल के बढ़ते हुए साहित्य के युग में नया विद्यार्थी सहज ही यह नहीं जान सकता कि किस पुस्तक के पढ़ने में उसका हित और किसके पढ़ने में अहित है। भाषा और भावों की दृष्टि से उत्तम और सु-प्रभाव-जनक ग्रन्थों के चुनाव में हमें आरम्भ से ही किसी अच्छे गुरु की शरण में जाना होगा। यदि ऐसा गुरु हमारे माता, पिता, भाई आदि में ही कोई मिल जाय तो सौभाग्य ही समझिए, नहीं तो बड़ी सावधानी के साथ उसकी खोज करना चाहिए। स्मरण रखिए, स्वार्थी और निकम्मे लेखकों ने साहित्य-सुरसरी को भी गन्दा करने की चेष्टा में कमी नहीं की है। ऐसे लोलुप लेखकों की दृष्टि में साहित्यिक पवित्रता का कुछ मूल्य नहीं। अबोध विद्यार्थियों की पवित्र भाव-भूमि में गन्दे और गले-सड़े बीज बोते उन्हें लज्जा नहीं आती। इसलिए शुद्ध साहित्य का पढ़ना अपना परम कर्त्तव्य समझिए। भूलकर भी गन्दा साहित्य हाथ में न आने दीजिए। उसे महाविष समझ कर छोड़ दीजिए। संसार के महापुरुषों के जीवनचरित, सभ्य और उन्नत जातियों के गौरव-पूर्ण तथा उदार इतिहास और वीर-गाथाएँ, सच्चे और स्वास्थ्य-प्रद सुन्दर वर्णन तथा यात्रा-वृत्तान्त, और वैज्ञानिक लेख पढ़िए।
[illegible]

शङ्काओं का किसी सच्चे गुरु के चरणों पर शिर रखकर निवारण कीजिए। निर्मल निरीक्षण के बल से अपने पढ़े हुए ग्रन्थों में सार वस्तु का ग्रहण कीजिए, और मनोयोग के साथ गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कीजिए। केवल किताबों के कीड़े न बनिए।

अपने दैनिक जीवन मे भी इस बात का ध्यान रखिए कि आप जिस प्रकार के वातावरण में विचरते हैं वह पवित्र हो। आप की संगति, आप की बैठक उठक, और आप के सभा-सम्मेलन सब आप के भाव और भाषा पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। दोषों से दूर हटना और गुणों का ग्रहण करना, अथवा दूषित भाषा का परित्याग और साधु भाषा से अनुराग, आपके अपने नैतिक बल पर निर्भर है। सामाजिक संस्कार और आचारिक व्यवहार हमारे शिष्टाचार-सम्बन्धी भावों को ढालनेवाले साँचे होते हैं। इसलिए ये संस्कार भी उपेक्षणीय नहीं। आप की रचनाओं में इन भावों की रेखाएँ भी प्रतिलक्षित होता हैं।

भाषा और उसका साहित्यिक रूप

भाषा भावों की ध्वनिमयी मूर्ति है। भाव उसका प्राण है। अथवा, भाषा अखिल विश्व की हृत्तन्त्री की झङ्कार है। विश्व के हृदय की गति के साथ साथ भाषा की गति-विधि में भी उसी के अनुरूप परिवर्तन होता रहता है।—

नवीनता के प्रेम इत्यादि के कारण भाषा का स्वरूप सदैव नया रूप धारण करता रहता है। फिर कभी कभी ऐसा युग भी आता है कि कोई प्रभावशाली लेखक अथवा एक लेखक-मण्डल अपनी लेखनी के चमत्कार से भाषा के प्रवाह को एक नई दिशा में बहा देता है। इस प्रकार युग-विशेष में भाषा भी अपना विशेष रूप रखती है, जिसका अध्ययन लेखक का कर्तव्य है।

भाषा के साहित्यिक, सांवादिक और ग्राम्य स्वरूप का अन्तर जान लेना भी कम आवश्यक नहीं। साहित्यिक स्वरूप वह है, जिसका प्रयोग उच्चकोटि के लेखक करते हों। सांवादिक स्वरूप वह है, जिसका प्रयोग शिक्षित समाज द्वारा बोलचाल में किया जाय। और ग्राम्य स्वरूप वह है जिसमें अशिक्षित जनता अपने भाव प्रकट करे। सुलेखकों का आदर्श साहित्यिक भाषा ही होती है।

अब हमें साहित्यिक स्वरूप के शब्दों, वाक्यों, परिच्छेदों (Paragraphs) और निबन्ध अथवा रचना के आवश्यक अङ्गों की ओर भी एक दृष्टि डाल लेना चाहिए।

शब्द

शब्द की शक्ति के विषय में हम पहले लिख चुके हैं। वही शब्द लेखक का शस्त्र है। उस का कुशल प्रयोग न जानने से

। उस की पहिचान के बिना शब्द का प्रयोग ठीक ठीक नहीं ह
कता । जैसे; मेघ, पयोधर, बादल, वारिवाह, धाराधर ये शब
क ही अर्थ के वाचक हैं। परन्तु 'धाराधर' कहने से मान
सलाधार मेंह की झड़ी का दृश्य सामने आ जाता है, तो 'वारिवाह
हवा में उड़ते हुए रुई के गालों के सदृश मेघों की दौड़ आँख
आगे दौड़ लगा जाती है । 'पयोधर' से प्यासे पपीहे की भाँ
ाँखें ऊपर को उचकने लगती हैं, तो 'बादल' से घुमड़ती हु
ाओं के दल-बादल उमड़े चले आते हैं । 'मेघ' में एक प्रका
गम्भीरता छिपी हुई है । इसी प्रकार प्रत्येक शब्द भाव क
सी विशेष बारीकी की ओर सङ्केत करता है । कुशल लेख
ब्दों की इस कोमलता का सदैव ध्यान रखता है। स्मरण
खए ।—

"जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित है
ाणानुबन्ध हैं, उसी प्रकार शब्द भी; ये सब एक ही विराट् प
र के प्राणी हैं । इन का आपस का सम्बन्ध, सहानुभूति, अ
ा-विराग जान लेना; कहाँ कब एक की साड़ी का छोर उड़क
ारे का हृदय रोमाञ्चित कर देता; कैसे एक की ईर्ष्या अथव
ध दूसरे का विनाश करता कैसे फिर दूसरा बदला लेता, कै
ाले लगते, बिछुड़ते; कैसे जन्मोत्सव मनाते तथा एक दूसरे क
यु से शोकाकुल होते—इनकी पारस्परिक प्रीति-मैत्री, शत्रुत

शब्दों की यह वंशोत्पत्ति स्वाध्याय और अभ्यास से ही धी
: जानी जाती है। आरम्भ में विद्यार्थी को चाहिए कि व
खकों की भाषा में इस बात को ध्यानपूर्वक देखता जाय f
केस अवसर पर किस शब्द का प्रयोग करते हैं। शिष्ट-समा
ातचीत सुनते समय भी वह शब्दों का ठीक ठीक प्रयो
ज्ञने की चेष्टा करे।

वाक्य

शब्दों का कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाय तभी से वाक्य-रचना व
ता और सुन्दरता की ओर रुचि उत्पन्न होनी चाहिए। वाक्य
तना में नीचे लिखी हुई बातें ध्यान देने योग्य हैं :—

) व्याकरण की स्पष्टता—पहली बार पढ़ते ही वाक्य व
व्याकरण-सम्बन्धी रचना स्पष्ट समझ में आ जाय।

) विस्तार—वाक्यों का विस्तार विविध प्रकार का हो
चाहिए। कोई वाक्य बहुत लम्बा तो कभी न हो, औ
बहुत छोटा भी बहुत कम।

वाक्य बहुत लम्बा होने से आँखों की वही दशा हो जाती
किसी चित्रशाला मे जल्दी जल्दी चलनेवाले व्यक्ति की हो
। उसकी दृष्टि एक चित्र से दूसरे पर शीघ्र ही पहुँच जाती
ार किसी का भी पूर्ण भाव वह नहीं समझ सकता। इस

य: व्याकरण की भूलें भी हो जाने की सम्भावना रहती है। र, पाठक का चित्त शब्दाडम्बर में ऐसा उलझ जाता है कि एक शब्द से दूसरे पर जाने की धुन में लेखक के अर्थ को त ही सा जाता है।

) आश्रित वाक्य-खण्ड—किसी वाक्य में जोड़े हुए अन्य वाक्य-खण्ड उसे बोझिल तथा शिथिल बनाने का कारण होते हैं। इसलिए, जहाँ वे आवश्यक हों प्रधान वाक्य में इस प्रकार गूँथे जायँ कि जब तक सम्पूर्ण वाक्य समाप्त न हो जाय उसका व्याकरण-सम्बन्ध पूरा न हो।

) संतोलन—लम्बे वाक्यों की रचना में, जहाँ सम्भव हो, उनके अङ्गीभूत भागों में ऐसी अनुरूपता हो कि प्रत्येक वाक्य उचित रूप से नपा तुला जान पड़े। एक अङ्ग भारी और दूसरा हलका होने से वह लड़खड़ाता हुआ न दिखाई दे।

) एकता—वाक्य में केवल एक ही विचार व्यक्त किया जाय उससे विभिन्न और कोई भाव न आने पावे।

) क्रम—साधारणतया व्याकरण के नियमों का पालन किया जाय, किन्तु जहाँ आवश्यक हो वहाँ परिवर्तन भी कर दिया जाय, कि सबसे प्रधान शब्द वाक्य के आदि या अन्त में रक्खे जा सकें।

) [illegible]

परिच्छेद (Paragraph)

च्छेद के विस्तार के विषय में कोई कठोर नियम नहीं बना
सकता। जिस प्रकार हमें किसी वस्तु के रखने के लिए उत
बड़ी पिटारी की आवश्यकता होती है जितनी में कि उस व
आकार समा जाय, उसी प्रकार प्रत्येक परिच्छेद उतना
होना चाहिए जितने में केवल एक विचार विकसित होक
जाय। इसके लिए इन बातों का विचार रखा जाय :—

) एकता—परिच्छेद में केवल एक विचार का विकास हो
) सार—परिच्छेद का आरम्भ ऐसे वाक्य से हो जो उसक
सार रूप हो, जिससे कि उसका अभिप्राय खुल जाय
अथवा परिच्छेद हमें किसी सार वस्तु की ओर ले जाय
और उसका अन्त उसी सार-वाक्य से हो।
) अन्वय वा सङ्गति—परिच्छेद से यह प्रकट हो जाय
वह उस एक ही विचार-शृङ्खला का क्रमबद्ध और यौक्ति
विकास है, जो कि उसके प्रमुख भाव से भली भाँति जु
हुई है।

रचना

[स्व]ाभाव गति से वह चलेगा, जितनी अधिक स्वाभाविकता उसमें [हो]गी रचना की स्रोतस्विनी उतनी ही मनोहारिणी और सुरम्य [हो]गी। संक्षेपतः उसके विचारणीय अङ्ग ये हैं :—

(१) एकता—समष्टि रूप से रचना में एक ही प्रमुख भाव होना चाहिए जो उसके अङ्ग अङ्ग में व्याप्त हो। यह भाव आरम्भ ही में व्यक्त कर देना अच्छा है।

(२) विश्लेषण—इस प्रमुख भाव का विश्लेषण (अङ्गों को अलग अलग करके दिखाना) वैज्ञानिक रीति से उसके अङ्गों और उपाङ्गों में होना चाहिए, कि रचना के भीतरी भागों में उनका पृथक् विचार किया जा सके। जैसे; किसी ग्रन्थ के सर्ग, सोपान, अध्याय, पाठ, प्रकरण आदि।

(३) सङ्कलन—इन अलग अलग भागों को ऐसे क्रम से रखा जाय कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी स्पष्ट हो, और वे सम्पूर्ण रचना से सुसम्बद्ध हों। जैसे; किसी विशाल भवन के दरवाज़े, खिड़की, बरामदे, छज्जे, कँगूरे आदि।

रचना हृदय के उद्गारों की अभिव्यक्ति है। उसे विविध रीतियों से व्यक्त कर सकते हैं, तो भी उसके दो मुख्य भेद हैं

इस पुस्तक में केवल गद्यमय रचना का ही वर्णन अभीष्ट है
: उसमें भी विशेषकर पाठशाला सम्बन्धी निबन्धों का। इस
: गद्य के भेदों पर विचार करने के पूर्व रचना के विषय पर भी
ा-सा विचार कर लेना अनावश्यक न होगा।

विषय

न्ध के विषय की सीमा और लेखक की शक्ति दोनों में जबतक
मञ्जस्य न हो तबतक लेख अच्छा नहीं हो सकता। आरम्भिक
ाक के लिए छोटे छोटे वर्णन सरल और सीधी भाषा में
खना ही बहुत है। यदि उसे दया, साहस, क्रोध आदि विष
खने के लिए दिये जायँ, तो उसका मन इन रूखे सूखे विषय
ऊब जायगा और वह लेख लिखने को बड़ा कठिन का
मझने लगेगा। इसलिए निबन्ध लिखने का आरम्भ नित्य प्र
देखी हुई वस्तुओं के वर्णन, और छोटी छोटी रोचक क
ओं की पुनरावृत्ति तथा लेखन से होना स्वाभाविक और सुकर है
पन से इस प्रकार का स्वभाव डालना मानों खेल खेल में ले
खना सिखाना है। आगे चलकर लेख में बल लाना, भावों
ास रूप मे व्यक्त करना, भाषा में लालित्य लाना आदि गु
चेवर्धन के साथ साथ अपने आप आने लगते हैं।

समें मेलों का इतिहास, उनका प्राचीन तथा आधुनिक
र्मिक सम्बन्ध आदि अनेक बातें आ जायँगी। परन्तु 'रामली
 मेला' अथवा 'अलीगढ़ की रामलीला का मेला' किंवा 'सरयू
ा का दृश्य' इन लेखों में विषय सीमित तथा परिसीमित
यगा और उसका लिखना सुकर होगा। लेखक को कचा त
यता के अनुसार ही निबन्ध की सीमा निर्धारित कर ले
चित है।

निबन्ध-भेद

वों ऐतिहासिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक, तुलनात्म
र्णनात्मक आदि अनेक प्रबन्ध-भेद कहे जा सकते हैं। जिस दृ
ए से किसी विषय-विशेष को लिखा जाय, वसा उद्देश-विशे
उसे एक अलग नाम दिया जा सकता है। परन्तु, साधारण
ा निबन्ध में चार बातें प्रधान होती हैं,—वर्णन, कथा, व्याख्
र तर्क। इन्हीं चारों के आधार पर निबन्ध के मुख्य चार भे
ये जाते हैं, वर्णनात्मक, कथात्मक, व्याख्यात्मक और तार्किक
य अन्य प्रकार के निबन्धों का समावेश किसी न किसी रूप
हीं के अन्तर्गत हो जाता है।

वर्णन

र्णन कहा जाता है, परन्तु इसमें यात्राएँ, दैनिक वृत्त (Diaries
न्यास आदि की भी गणना है। और, अवसर अवसर पर
भी प्रकार के निबन्धों—विशेषकर पद्य—में इसका उपयोग हो
आगे चलकर वे विषय भी इसमें आते हैं, जिनका सम्बन्
द्र तथा भावनाओं से है।

वर्णन के अङ्ग

च कोटि के लेखकों के वर्णन में ये बातें पाई जाती हैं,—(
ल वर्णन (२) विस्तार (३) विविध विचार-कोण (४) संगत भा
) प्रस्ताव।

(१) स्थूल वर्णन (Outline)— प्रायः लेखक वर्णनीय विष
एक व्यापक बाह्य रेखा बनाकर लेख आरम्भ करता है।

(२) विस्तार (Details)— इसके पश्चात् वह पृथक् पृथ
ों का सविस्तर वर्णन करता है। इसमें वह इस बात का ध्या
ता है कि जो बात जितनी अधिक प्रधान हो उस पर उतना
धिक बल रहे।

(३) विचार-कोण (Points of view)— कभी कभी समस
र्णन का और भी अधिक व्यापक रूप दिखाने के लिए वह
न भिन्न पहलुओं से वर्णन करता है।

(५) प्रस्ताव (Suggestions)— सभी पाठकों की रुचि एक-सी नहीं होती, इसलिए लेखक कभी कभी भाव का विकास न करके केवल उसका प्रस्ताव कर देता है। पाठक अपनी अपनी रुचि के अनुसार उसकी पूर्ति करते रहें।

कथा

कथा में लेखक का उद्देश यह रहता है कि वह क्रमागत, वास्तविक अथवा काल्पनिक घटनाओं के अनुरूप एक क्रमबद्ध विचार-माला प्रकट करे। कथा के उदाहरण पुराणों, इतिहासों, जीवनचरितों तथा उपन्यासों में पाये जाते हैं।

वर्णन और कथा का अन्तर जानने के लिए यों समझना चाहिए कि वर्णन यदि चित्रलेखन से मिलता है, तो कथा सिनेमा (चलते फिरते चित्र-प्रदर्शन) के अनुरूप है। चित्र एक साथ ही अपने सब अङ्गों की सुन्दरता देखनेवाले के सामने रख देता है, और सिनेमा में चित्रों का ऐसा तार बँध जाता है कि एक के पीछे दूसरे चित्र की संचालन-क्रिया से एक पूरी घटना मौन भाषा में व्यक्त हो जाती है।

कथा के अङ्ग

(१) घटना-क्रम (Order of events) — कथा में काल औ
के अनुसार घटनाओं का उत्तरोत्तर विकास होना चाहिए।

(२) कारण और कार्य (Cause and effect)— घटनाअ
र उनके कारणों का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से बता देना चाहिए।

(३) दृष्टान्त (Illustrations)— जहाँ कथा-वर्णन में को
कस्मिक परिवर्तन हो, जिसका समझना पाठक के लिए कठि
पड़े, वहाँ मिलती जुलती घटनाओं का दृष्टान्त दे देन
हिए।

(४) संक्षेप (Summaries)— अच्छे लेखक प्रायः कथा
क खण्ड के अन्त में उसका सार दे देते हैं। इससे पाठक क
रण-शक्ति का बोझ हलका हो जाता है, और उसे पिछले भा
जिसके साथ कि आगे का भाग मिलाना है, स्पष्ट ज्ञान ह
ता है।

(५) आलोचना (Criticism)— जहाँ वर्णनीय घटनाअ
बड़े बड़े पात्रों का विषय आता है, वहाँ लेखकों को उनक
रेत्र-चित्रण आवश्यक जान पड़ता है, और उनके कार्यों तथ
ओं की आलोचना लाभप्रद सिद्ध होती है।

व्याख्या

व्यापक विषयों का ज्ञान कराया जाता है। जैसे; दया, क्षमा, शिष्ट आदि।

व्याख्या के अङ्ग

वैज्ञानिक रचनाओं में ये बातें पाई जाती हैं,—(१) मूलतत्वों की स्थापना, (२) लक्षण वा परिभाषा, (३) विवेचन, (४) पर्य्यालोचन।

(१) मूलतत्वों की स्थापना (A Foundation of Facts)—विज्ञान की प्रत्येक शाखा कुछ मूल-तत्वों पर निर्भर रहती है, जो कि मानव-समाज के निरीक्षणों तथा अनुभवों से प्राप्त होते हैं।

(२) परिभाषा (Definition)— किसी पदार्थ —उसकी क्षमता; उसकी प्रक्रिया आदि—के बताने के लिए पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता होती है। परन्तु, उन शब्दों का व्याख्या में प्रयोग करने के पूर्व उनकी परिभाषा का ज्ञान करा देना चाहिए, जिससे पाठक लेखक के अभिप्राय को समझ जाय।

(३) विवेचन (Inductions)— प्राकृतिक नियमों की खोज के लिए उन वैज्ञानिक तत्वों के अलग अलग विभाग तथा तुलना करना जो उन नियमों के ही द्वारा उत्पन्न होते हैं।

(४) पर्य्यालोचन (Deductions)— स्थापित वा निश्चित नियमों का विशेष अवस्थाओं में प्रयोग करना।

तत्वों को ढूँढ़ा जाय, फिर पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान कराय
र। इसके पश्चात् विवेचन और पर्यालोचन से विषय व
ह किया जाय।

तर्क

में लेखक का उद्देश दूसरों के विश्वास वा व्यवहार पर प्रभा
ने का प्रयत्न होता है। इसके प्रधान क्षेत्र सदाचार, धर्म
नीति आदि हैं। कथित भाषण भी इसी में सम्मिलित हैं। इ
ो सर्वोत्तम शस्त्र हैं,—युक्ति और प्रबोधन।

तर्क के अङ्ग

र्किक निबन्धों में इन बातों से लेखक की ज्ञान-सीमा का परिच
ता है,—(१) विषय (२) युक्ति-विधान (३) प्रबोधन-चातुरी

(१) विषय (Theme)—यह आवश्यक है कि लेखक
य के स्थूल सिद्धान्तों, विस्तार की विशेषताओं तथा मुख्य मुख
ुओं का परिज्ञान हो। पाठकों वा श्रोताओं का मनोयोग स्थि
ने तथा उत्साह उत्पन्न करने के लिए ये बातें बहुत ही आवश्यक

(२) युक्ति-विधान (The Methods of Logic)— पाठ
शेषकर विपक्षी तथा आलोचनात्मक) को अपनी बात मनव

(२) प्रबोधन-चातुरी (The Devices of Persuation)—जिस प्रकार कि युक्ति का प्रभाव बुद्धि पर पड़ता है, उसी प्रकार प्रबोधन का भावनाओं पर। इसलिए चतुर लेखक वा वक्ता दोनों का प्रयोग करता है। वह पाठकों वा श्रोताओं की मनोवृत्तियों को हिलाता और भावों को उभारता है, जिससे कि उनका प्रेम-घृणा; साहस-भय; सहानुभूति-विरोध, और कभी कभी उनकी धार्मिक, आचारिक और देशाभिमान की भावनाएँ भी लेखक की ओर खिंच आती हैं।

शैली (Style)

लिखने का ढंग शैली कहलाता है। कोई लेखक किस प्रकार अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है, यही बात उसकी शैली में देखने की होती है। निबन्ध का सर्वस्व शैली ही है। जिस प्रकार,

'स्रवन, नयन, मुख, नासिका, सब के एकइ ठौर।
रहनि, सहनि, चितवनि, चलनि, चतुरन की कछु और॥'

उसी प्रकार एक ही बात कुशल लेखक की शैली में अन्यों की अपेक्षा कुछ और ही हो जाती है। शैली ही लेखक के कौशल का प्रकाश है। उसमें लेखक के संस्कार, चरित्र, विचार आदि की पूरी झलक दिखाई देती है। जिसे [illegible]

नी मोहनी डालती है। इसलिए आरम्भ से ही शैली के विकार
ड़ी सावधानी से काम लेने की आवश्यकता है। अच्छे अच्
कों का आदर्श सामने रखकर आगे बढ़ना चाहिए। नदी व
-धारा की भाँति उसमें हमारी ध्वनि और गति एक होक
ती हुई दिखाई दे।

शब्दों, विचारों के प्रकाशन तथा वाक्य-रचना की दृष्टि
ी कई प्रकार की होती है।

किसी भाव के अभिव्यक्त करने में शब्दों की जितनी संख्
काम लिया जाता है उसके विचार से शैली के तीन भेद हैं,
वाग्बहुल (Verbose), जिसमें शब्दों की अत्यधिकता प
ती है। (२) संक्षिप्त (Concise), जिसमें थोड़े शब्दों से का
या जाता है। (३) निर्दिष्ट (Precise), जिसमें न तो शब
ुत अधिक होते हैं, न बहुत कम।

विचारों के प्रकाशन में जिस ढंग से चुनाव किया जाता
ससे शैली के दो रूप होते हैं,—(१) अलंकृत (Ornate), जिस
लङ्कारमयी अथवा चित्र विचित्र भाषा का प्रयोग किया ज
) सुबोध (Plain), जिसमें भाषा सरल हो।

वाक्य-रचना की दृष्टि से भी शैली के दो भाग हैं,—(१) धा
ही (Flowing), जिसमें शब्दों का अन्वय सरल हो। (
टिल (Involved), जिसमें शब्दों का अन्वय मिश्रित हो।

) सरूपक, जिसमें रूपकों की बहुलता हो। (२) विशेषणात्मक, जसमें विशेषणों का प्रयोग अधिक हो। (३) लुप्तपद जिसमे वों का पूर्ण प्रकाश न हो। (४) उद्घोष (Bombastic), जिसमें धारण, सरल शब्दों की अपेक्षा ऐसे शब्द अधिक प्रयुक्त हों नका स्वर बहुत ऊँचा हो। (५) उग्र वा कटु, जिसमें कटुता का भास हो। (६) व्यंग्य, जिसमें उलटे अर्थों से भाव समझा ाय। (७) अर्थ-विरोधिनी, जिसमें एक विचार को साधने के लिए सके विरोधी विचार रखे जायँ।

आलोचनात्मक दृष्टि

सी ग्रन्थ की शैली की परीक्षा के लिए इन बातों पर ध्यान रखना ाहिए,—(१) उस समय की भाषा की अवस्था, (२) ग्रन्थ के रचना-ाल तक का उस विषय का विकास, (३) लेखक की मौलिकता।

शैली का स्वरूप

ली का स्वरूप इन अङ्गों में विभक्त किया जा सकता है,—(१) चार (Thought), (२) कथन (Expression), (३) अनुभूति Feeling)।

विचार

वचार के मुख्य गुण हैं,—(१) सरलता (Simplicity), (२)

) भाव सरलता से समझ लिये जाते हैं; क्योंकि उस पाठकों की योग्यता पर पूर्ण विचार रखा जाता है।

) अमूर्त वा भाव-बोधक उदाहरणों के स्थान में प्रायः मू वा प्रत्यक्ष उदाहरण दिये जाते हैं।

) सामान्य व्यापक कथनों को छोड़कर विशेषार्थ-बोधक कथन को प्रधानता दी जाती है। जैसे; खेल तमाशा स्थान में थियेटर, सरकस, झूला, कुश्ती आदि।

) लुप्तपद और संक्षिप्त प्रयोग काम में नहीं लाये जाते।

ष्टता— स्पष्ट शैली में ये बातें पाई जाती हैं :—

) साधारणतया शब्द उनके सामान्य अर्थों में ही प्रयु किये जाते हैं और यदि उनका अन्यथा प्रयोग कि जाता है तो प्रसङ्ग में असामान्य अर्थ के सम्बन्ध कुछ सङ्केत रहता है।

) जहाँ शब्दों के कई अर्थ होते हैं, वहाँ एक परिच्छेद-विशे में केवल एक ही अर्थ प्रयुक्त किया जाता है।

) कोई असंगत कथन नहीं होता, जिससे कि विचारों अस्पष्टता सूचित हो।

४) प्रमुख विचारों को ओजस्विता के साथ और पहले र

३—आरोहण— समुचित आरोहण में ये बातें पाई जाती हैं:—

(१) विचार विषय के अनुरूप होते हैं।

(२) अब तक किसी विषय में जो कुछ जाना जा चुका है उस ज्ञान से काम लिया जाता है। इसे युग-गत (Up-to-date) ज्ञान कहते हैं।

कथन

कथन के गुण ये हैं,—(१) रुचि (Choice). (२) अनुक्रम (Order), (३) स्वर-मधुरता (Melody), (४) यथार्थता (Appropriateness)।

१—रुचि— जहाँ कथन में रुचि होती है, वहाँ ये बातें पाई जाती हैं:—

(१) लेखक अपना अभिप्राय पाठकों पर प्रकट करने के लिए चुने हुए शब्दों तथा पदों का व्यवहार करता है।

(२) अव्यवहृत शब्दों तथा अति प्राचीन —जो प्रचलित न हों— कथनों का प्रयोग नहीं किया जाता।

(३) ग्राम्यता वा अश्लीलता से बचाव रखा जाता है।

(४) व्याकरण की प्रचलित अशुद्धियाँ नहीं पाई जातीं।

२—अनुक्रम— जहाँ कथन में अनुक्रम हो, वहाँ ये बातें पाई जाती हैं:—

(२) शब्दों का अनुक्रम हिन्दी-ढंग का ही होता है, संस्कृत अथवा इँग्लिश का अनुकरण नहीं।

—स्वर-मधुरता— जहाँ भाषा श्रुति-मधुर होती है, वहाँ कानों तथा मस्तिष्क को अद्भुत आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार के कथन में ये बातें पाई जाती हैं:—

(१) कर्कश-स्वर-वाले शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता।

(२) दो ऐसे शब्द साथ साथ नहीं प्रयुक्त किये जाते जिनसे कि अरोचकता उत्पन्न हो।

(३) उन शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनका कि स्वराघात एक दूसरे से तुरन्त मेल खा जाय।

(४) कथन में इतनी विविधता होती है कि एकरसता दूर रहे।

—यथार्थता— जहाँ कथन विचार के अनुरूप होता है, वहाँ ये बातें पाई जाती हैं:—

(१) सरल भाव सरल शब्दों में व्यक्त किये जाते हैं।

(२) परिवर्धित विचार ऐसी पारिभाषिक भाषा में व्यक्त किये जाते हैं, जो सहज ही में समझी जा सके।

(३) उदात्त विचार मानों स्वतः उत्कृष्ट भाषा में व्यक्त होते हैं।

(४) क्रिया का वेग छोटे छोटे वाक्यों के प्रयोग द्वारा प्रभावित होता है।

प्रयोग किया जाता है। जैसे; ररक, खड़खड़, कलकल फुङ्कार आदि।

अनुभूति

अनुभूति में इन गुणों का समावेश रहता है,—(१) प्रवृत्ति (Passion), (२) ओज (Strength), (३) कान्ति वा मनोरमत्व (Charm)।

१—प्रवृत्ति— उन रचनाओं में जो कि इन्द्रिय-वृत्ति को आकृष्ट करती हैं ये बातें पाई जाती हैं.—

(१) वे मानव-जाति, अन्य प्राणियों तथा प्रकृति के प्रति प्रेम; औरों के साथ सुख, दुःख वा सामान्य दशाओं में सहानुभूति तथा अनिवार्य विपत्ति के अवसर पर करुणा के भावों को जाग्रत् करती हैं।

(२) वे अन्याय पर क्रोध; अपमान पर रोष; और महा भय में शङ्का की कठोर कल्पनाओं को उत्तेजित करती हैं।

२—ओज— ओजस्विनी रचनाओं में ये लक्षण पाये जाते हैं:—

(१) प्रकृति के व्यापार अथवा मानवीय चरित्रों के वर्णन हमारे हृदय में बल की भावनाएँ भरते हैं।

(२) प्रकृति के रहस्य हमें उत्कृष्ट भावों की ओर ले जाते हैं।

(३) जहाँ ओज की भिन्न भिन्न [illegible]

(४) जहाँ विपरीत भावनाएँ वर्णित हों, वहाँ वे इस प्रकार साथ साथ रखी जाती हैं कि अर्थ-विरोधिनी युक्तिद्वारा ओज की मात्रा अधिक बढ़ जाय।

(५) विचारों का बल बढ़ाने के लिए अलङ्कार और रूपकों का प्रयोग किया जाता है।

कान्ति— कुछ रचनाओं में विशेष मनोरमत्व तथा आह्लादित करनेकी दुर्धर शक्ति होती है, जो इन कारणों से जन्म लेती है,—(१) लालित्य (Elegance), (२) रसज्ञता (Taste), (३) विनोद (Humour), (४) सारस्य अथवा वाक् चातुरी (Wit), (५) लेखक का कोई विशेष अनिर्वचनीय जादू।

१—लालित्य— सुललित रचनाओं में ये बातें पाई जाती हैं:—

(१) सुरुचि-पूर्ण शब्दों का चुनाव।

(२) परिष्कृत कथनों की योजना।

(३) ध्वनि, लय तथा संतोलन की सूक्ष्मता की ओर बहु ध्यान, जिसको कि परिमार्जन (पालिश) कहते हैं।

२—रसज्ञता— जो रचनाएँ सु-रसिकता के लिए प्रसिद्ध हैं उनमें ये गुण होते हैं :—

(१) धर्म और सदाचार की ओर समुचित ध्यान।

(२) भिन्न भिन्न कोटि के पाठकों के विचारों के लिए सम्मान।

(५) सत्य से हटानेवाली अतिशयोक्ति का अभाव।

३—*विनोद*— विनोदमयी रचनाएँ वे होती हैं, जो अपने अथवा औरों के दोषों तथा विफलताओं पर आनन्द देनेवाली मीठी मीठी हँसी दिलाती हैं। वास्तविक विनोद में ये बातें देखने की हैं:—

(१) हास्य की एक झलक हो।

(२) विफलता की ही ओर सङ्केत हो, व्यक्ति की ओर न हो।

(३) दोष के साथ जो गुण हो उसे भी स्वीकार किया जाय।

(४) विनोद सौहार्दिक हो, शास्त्रविक न हो, उसमें अनुराग हो, वैर न हो।

(५) उस में वाक्-चातुर्य का पुट सदैव रहे।

४—*वाक्चातुरी*— वाक्चातुरी की रचनाएँ वे हैं, जो औरों पर हँसी वा क़हक़हा लगाने का प्रभाव उत्पन्न करती हैं। वाक्चातुरी के ये लक्षण हैं:—

(१) विपरीत विचारों का विचित्र संयोग।

(२) इन विचारों पर सोचने का मौलिक ढंग।

(३) शब्दों पर श्लेष (एक ही शब्द का कई अर्थों में

४५५१ पुस्तकालय इलाहाबाद

अलङ्कार

तो सहज-सुन्दर को भूषण निरर्थक हैं। यदि विचार चुभत
ा हो, तो भाषा की तो सजावट से क्या? सुबोध भाषा ह
-प्रकाशन का स्वाभाविक ढंग है। परन्तु जिस प्रकार कभ
ी घुमावदार घाटियों अथवा एक दूसरे के गले लगती हु
ा की नयनाभिराम निकुञ्जों के दर्शन से एक निराला ह
नन्द प्राप्त होता है, उसी प्रकार भाषा में अलङ्कारों की रङ्ग
ङ्गो से इन्द्र-धनुष की-सी छटा झलकने लगती है।

भाव-प्रकाशन में सुबोध रीति का परिवर्तन ही अलङ्कार है
ाँ क्लिष्ट भावो को शब्दो में व्यक्त करना हो, वहाँ उन्हें सुगमत
ीक दिखाने के लिए अलङ्कार का प्रयोग किया जाता है, औ
सके साथ ही वे अधिक प्रभावशाली भी बन जाते हैं।

यहाँ हम अलङ्कार के पारिभाषिक नामों में अपने पाठकों क
उलझाकर केवल कुछ अलङ्कारिक प्रयोगों का दिग्दर्शन क
स ही उचित समझते हैं। जिन्हें इस विषय में अधिक जानका
प्त करनी हो वे अलङ्कार के ग्रन्थों का अवलोकन करें; क्यों
स विषय पर पृथक् ही अनेक ग्रन्थ हैं।

अलङ्कारों के प्रयोग में हमारे दृष्टि-कोण की असंख्य दिश

सरूपता

लती जुलती बातों से किसी भाव का स्पष्ट बोध कराना
कर्ष बढ़ाना सरूपता का लक्षण है। इसमें जिन पदार्थों
ना की जाय उनमें समान गुणों का मिलान किया जाता है
गुण चाहे एक हो वा अधिक। समान गुणों की न्यूनाधिक
विचार से इस प्रकार के अलङ्कार भी अनेक प्रकार के
ते हैं। जैसे;

(१) 'उसके दाँत ऐसे उज्ज्वल थे जैसे दूध'। यहाँ श्वेतता
ग्रहण किया गया है, न कि एक के ठोस होने और दूसरे
लेपन का।

(२) 'सोमदेव काला नाग है, उससे सचेत रहना'। इस
र करने का भाव छिपा हुआ है।

(३) 'विपद् के बादलों का सामना करने के लिए शस्त्र-सज्जि
।' इसमें दो भिन्न कोटि के अलङ्कारों का मेल है।

(४) 'तुलसी' की कविता-सरिता में भक्ति का सरस प्रवाह है
' में भी वही बात है; उसमें सख्य-भाव का स्रोत उमड़ रहा है
व' के काव्य-कानन में निसर्ग-रमणीयता है, पर, झाड़-झंखा
र शोकों से मार्ग कण्टकाकीर्ण है। 'बिहारी' रसिकों के शास्त्र

(६) 'उसके पास रोटियाँ नहीं हैं।' 'वह कालिदास है। 'विद्यार्थि-संसार अलग ही है'। 'मेरा दूसरा हाथ नहीं है।' इनं क्रमशः 'भोजन, कवि, दशा, सहायता' का भाव है, जो दूस मिलते-जुलते शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है।

इसी प्रकार और भी अनेक भेद हो सकते हैं।

विरोध

कभी कभी विरोधी भाव से कोई विचार सहज ही समझ में आ जाता और उसमें सौन्दर्य आ जाता है। इस प्रकार के अलङ्कार के भी अनेक भेद हैं। जैसे,—

(१) 'कवि के रोने में आनन्द आता है।' यह विरोध का सीधा ग है।

(२) 'वह बालक नहीं है।' यह चतुर कहने का ढंग विरोध के नषेध रूप में है।

(३) 'छोटा-सा बीज ही बड़े बरगद का पिता है।' यहाँ शब्दों विरोध है कि छोटे से बड़े की उत्पत्ति है।

(४) 'धर्मशीलता तव जग लागी। पावा दरस हमहुँ बड़ भागी॥' इ व्यंग्य है। यहाँ रावण की अधर्मशीलता से अभिप्राय है।

(५) 'आपकी कठोर कृपा ने ही उसे बिगाड़ा।' 'कठोर कृपा' शब्द-विरोध है।

समीपता

इस प्रकार के अलङ्कारों में संगत भावों से अर्थ जाना जाता है। जैसे,—

(१) 'उसकी लेखनी में चमत्कार है।' यहाँ लेखनी से लेखक की रचना का ज्ञान होता है।

(२) 'आप को प्याला प्रिय है।' 'प्याला' यहाँ शराब का द्योतक है।

(३) 'मैंने तुलसी का अध्ययन किया है।' यहाँ 'तुलसी' से उसके ग्रन्थों का अभिप्राय है।

(४) 'उस की जेब भारी है।' यहाँ 'जेब' धन के लिए आया है।

(५) 'वह बढ़-बढ़कर बातें करता है।' यह झूठा कहने का कुछ कम अप्रिय ढंग है।

(६) 'सन सन', 'घड़ घड़', 'कल कल', 'भन भन', आदि ध्वनियों के अनुकरण से बने हुए शब्द हैं।

(७) 'कर्मयोग उसका मूलमंत्र है; कर्म के लिए वह अपना धन दे सकता है; तन दे सकता है; यही नहीं अपना जीवन दे सकता है।' इस में उत्तरोत्तर उत्कर्ष है।

निबन्ध का आरम्भ

पि शैली के स्वरूप में कही गई बातों को आँखों के सामने
ने से किसी भी प्रकार की रचना का मार्ग खुल जाता है
पि नये लेखकों को आरम्भ में जिस कठिनाई का अनुभव
ा है वह भी भुला देने योग्य नहीं है। यह तो मानी हुई बात
के जिस विषय पर लेख लिखना है उसका थोड़ा बहुत ज्ञान तो
ार्थियों को होना ही चाहिए परन्तु, यह सब कुछ होते हुए
उनमें से बहुत से यह नहीं समझ सकते कि लेख किस प्रका
रम्भ किया, कैसे उसे निभाया जाय, और कैसे उसका अन्त
या जाय। प्रायः इसी प्रकार के प्रश्न विद्यार्थियों द्वारा शिक्षकों
सामने रखे जाते हैं।

जिस प्रकार बढ़े हुए पानी का प्रवाह जिधर मार्ग पाता है उध
उमड़ पड़ता है, उसी प्रकार उठे हुए भावों में जो लहरें-स
ती हैं उन्हीं को समुचित शब्दों में लिख देना सर्वोत्तम विधि है
ी को सीधा अपने विषय पर आ जाना कहते हैं। कुशल लेख
र उधर के झमेले में न पड़कर इसी मार्ग का अवलम्बन कर
। परन्तु, यह मार्ग जितना स्वाभाविक है उतना सुलभ नहीं
का एक कारण तो व्यक्तिगत प्रतिभा की न्यूनाधिकता है, ज
र्वथा मनुष्य के अधिकार की बात नहीं। दूसरा बचपन से

जिस विषय पर लेख लिखना हो सब से पहले उसकी सी
ो अच्छी तरह जाँच लिया जाय, कि किन किन विचारों
ावाह उसके अन्तर्गत हो सकता है तब आगे बढ़ा जाय। कि
षय की व्यापकता, उसके शब्दों की गूढ़ता अथवा अन्य कि
ारण से हिचकने की आवश्यकता नहीं, जरा साहस से का
ने से बड़ी बड़ी जटिल गुत्थियाँ खुल जाती हैं। तैरनेवाला पा
गहराई की परवा नहीं करता; उसकी दृष्टि तो सदैव पहुँच
ले किनारे पर रहती है।

विषय की सीमा का अनुमान कर लेने पर उसमें तन्मय
ना चाहिए, और जो जो विचार उसके सम्बन्ध में मन में उ
हें सङ्केतरूप से लिखते जाना चाहिए। विचारते समय भावो
सी क्रम अथवा बन्धन की आवश्यकता नहीं; क्योंकि इस
ते हुए विचारों की शृङ्खला टूट जाने तथा उसमें गाँठ लग जा
भय है जब सब विचार एक बार लिख लिये जायँ, तब उनक
र स्थिर करना उचित है। वह इस प्रकार कि जो भाव पह्
क्त करना है उसे पहले लिखा जाय और जो उसके पीछे लिख
उसे पीछे। विशेष ध्यान इस इस बात पर रहे कि उन सब
ा तार्किक सम्बन्ध रहे कि स्वाभाविक ही एक से दूसरा निकल
हुआ जान पड़े, और लेख में प्रधान विषय का पूर्ण परिपा
जाय। इसे लेख का ढाँचा, पूर्व विचार, विचार-सारिणी
अर-तालिका वा अन्य किसी ऐसे ही नाम से पुकार सकते हैं

इसके बिना लेख का कोई अङ्ग बड़ा, कोई छोटा, कोई काना, को
ड़ा, कोई लूला और कोई लँगड़ा हो जायगा। अन्तमें उस कुरूप
ना पर, विज्ञापन के लिए बने हुए चित्रों की भाँति किसी को
 आयेगी तो किसी को हँसी। नये लेखकों को तो इसके बिन
ी बढ़ना ही न चाहिए, वरन् बड़े बड़े और सिद्धहस्त लेखक
इसका आश्रय किसी न किसी रूप में लेते ही हैं।

एक बार ढाँचा बना चुकने पर यह आवश्यक नहीं कि फि
में कुछ परिवर्तन ही न किया जाय। यदि लिखते लिखते बीच
कोई नया भाव उठ खड़ा हो, अथवा किसी भाव को छोड़न
 तो वैसा अवश्य करना चाहिए, परन्तु बड़ी सावधानी के
थ। ऐसा करते समय देख लेना चाहिए कि तार्किक क्रम
ई विक्षेप तो नहीं पड़ा।

जब विचार संग्रह कर लिये, तब लेख लिखना सुगम हो जात
 ढाँचे के एक एक विचार पर एक एक परिच्छेद (पैराग्राफ़
लग लिख देने से लेख सहज ही पूरा हो सकता है।

एक बात और है। विचार भी सुलझ गये, और ढाँचा
मने है, पर क़लम नहीं चलती। समझ नहीं पड़ता कि कि
ब्दों या वाक्यों से आरम्भ करें। यह दशा ठीक वैसी ही
ी कि उस यात्री की होती, जिसके सामने नाव खड़ी है,

र्क पैर रखता है और नाव जरा डगमगा जाती है। इसमें दोष
व का नहीं, भय से वह स्वयं अपने शरीर को साधना भूल
या है, और उसे नाव की संतरण-शक्ति में अविश्वास उत्पन्न हो
या है। जहाँ उसने अपने को सँभाला, देखा कि नाव ठीक चलने
गी है।

कभी यह न सोचिए कि लेख आरम्भ करने का कोई ऐसा
ार्ग मिल जायगा जैसे पक्की सड़क। नहीं, सड़कें सब स्थानों में
हीं होतीं। पगडंडियाँ, पहाड़ी घाटियाँ, और नदियों के तट भी
ार्ग हैं, और वे स्वाभाविक सौन्दर्य में सड़कों से कहीं बढ़कर हैं।
नकी नैसर्गिक छटा बड़ी मनोहारिणी होती है। इसीलिए तो यह
कहा गया है कि जो भाव अपने मन में उठे उसे अपने ढग से
स्वाभाविक रूप में औरों के सामने रखिए। अपने शब्दों तथा
ाक्यों में अपनी ही रुचि का सर्वोत्तम चुनाव कर लीजिए, और
लेख आरम्भ कर दीजिए। यही सब से अच्छा मार्ग है। इसके
अतिरिक्त जिन मार्गों का अवलम्बन किया जाता है वे भी एक नहीं
अनेक हैं। धुरन्धर लेखकों की शैली के अनुकरण पर अवलम्बित
होने के कारण वे हमारे लिए अच्छे पथ-प्रदर्शक का काम देते हैं।
बहुधा लेखक इन मार्गों का अनुसरण करते हैं,—

लेख की एक सुन्दर भूमिका बाँधी जाती है, जिससे पाठकों

ोधी दृष्टान्त द्वारा प्रधान विषय पर आना भी एक ढंग है। इस
ना ध्यान रहे कि भूमिका बहुत लम्बी न हो, विषय के अनुरू
हो। चुने हुए तथा चुभते हुए शब्दों में लिखकर उसे प्रभाव
लिनी बनाया जाय।

कभी कभी एक आकर्षक वाक्य वाक्य द्वारा विषय का महत्
ा दिया जाता है, जिससे पाठक तुरन्त उस ओर झुक जाय
य के सुमधुर अथवा भीषण परिणाम द्वारा भी पाठकों क
य हिला दिया जाता है, और वे सचेत कर दिये जाते हैं
ने हृदय के विकार, हर्ष, क्रोध, घृणा, विस्मय आदि के सूच
दों द्वारा भी पाठकों के मन पर अधिकार जमाया जाता है
ी कभी कथा का सार आदि में ही लिखकर विषय को स्प
ने में सहायता पहुँचाई जाती है। बड़े बड़े विद्वानों वा कवि
विदों के उद्धरण भी लेख के आदि में लिख दिये जाते हैं। इन
य पर बड़ा अच्छा प्रकाश पड़ता है। परन्तु, ऐसे अवतरण
चुनाव में बड़ी चतुराई की आवश्यकता है। उनका भाव विष
प्रधान विचार का सूचक होना चाहिए, और उनके शब्दों
जली की सी शक्ति हो, जो छूते ही पाठकों के हृदय में स्फू
न्न करदे। परिस्थितियों के वर्णन तथा काल-क्रम से भी अने
ख आरम्भ किये जाते हैं। प्रायः ऐतिहासिक लेखों में ऐसा

ख देना भी एक नया प्रभाव लाता है। इसमें लेखक की मर्मज्ञत
ा नमूना आरम्भ ही में मिल जाता है, और पाठक श्रद्धा के भाव
कर पढ़ना आरम्भ करता है। कहीं कहीं वर्णनों में अनुकरण
ाली ध्वनियाँ जैसे; धड़ड़ड़ धड़ड़ड़, घूँघूँ, सननन सननन, झम
म इत्यादि के द्वारा भी दृश्य का चित्र पाठकों के सामने आ
ाता है। किसी प्राकृतिक छटा का मनोरम वर्णन अथवा किसी
ीभत्सकाण्ड की एक झलक भी अतुलनीय आकर्षण उत्पन्न
रती है। इसी प्रकार और भी अनेक ढंग काम में लाये जा
कते हैं। लेखक की उदार और विशद कल्पना इन सब की
ननी है।

इसके अतिरिक्त कोई कोई लेखक मोटे मोटे अक्षरों से अथवा
ब्दों के नीचे रेखाएँ खींचकर किसी बात का महत्व प्रकट करते
। परन्तु, ये बालकों को बहलाने की बातें हैं। अच्छे पाठक स्वय
ार ग्रहण करते हैं। हाँ, किसी गणित वा चिकित्सा की पुस्तक में
से नियम, जो अत्यावश्यकीय हों, और जिनके लिए अन्य बातें
ा पढ़ना निरर्थक-सा प्रतीत हो यदि मोटे मोटे अक्षरों में दे दिये
ायँ तो वे लाभप्रद सिद्ध होते हैं।

लेख आरम्भ कर देने पर विषय का मध्य भाग सहज ही
लिखा जा सकता है। तत्सम्बन्धी सभी विचारों का समावेश उसमें
[illegible]

की अधिक भरमार कभी अच्छी नहीं—विशेषकर छोटे छोटे
न्धों में। हाँ तुलनात्मक निबन्धों में इनका होना एक बड़
ी गुण है। यदि कोई अवतरण किसी अन्य भाषा से लिय
। है, तो हिन्दी पाठकों के लिए उसका हिन्दी रूपान्तर अथव
ा अवश्य दिया जाय।

अब अन्तिम कठिनाई निबन्ध को समाप्त करने की है। ज
ाकता निबन्ध के आरम्भ करने के लिए आवश्यक है, वही उ
ाप्त करने के लिए भी। यदि अन्त अच्छा न हुआ तो लेख क
ाव बहुत कम हो जायगा, और किसी किसी दशा में तो मि
जायगा। यहाँ लेखक को अपने बल का पूर्ण प्रयोग करना है
अपने सन्देश की आत्म-शक्ति का प्रभाव दिखाना है, जिस
ा वह पाठक को अपना करके छोड़ दे। आरम्भ की भाँ
ाप्ति के लिए भी कोई निश्चित मार्ग नहीं है। इसकी सजीव
खक की लेखनी की जीवनी-शक्ति पर ही निर्भर है। अपने उद्गा
स्वाभाविक रूप में रख देना ही इसका भी सर्वोत्तम मार्ग है
-प्रदर्शन के लिए नीचे लिखी कुछ बातों पर ध्यान रख
ाहिए,—

ओजस्विनी भाषा में विषय का संक्षिप्त सार लिखकर पाठ
प्रभावित किया जाय। अन्त में भला वा बुरा परिणाम दिख

पर प्रकाश डाला जाय। विषय का प्रतिपादन करते हुए इसी के अनुरूप कोई अवतरण दे दिया जाय। कोई रोचक वर्णन अवस्थानुसार उत्तरोत्तर उत्कृष्ट वा अवनत बनाया जाय। पूर्वापर सम्बन्ध से भविष्य की आशा का एक चित्र खींच दिया जाय। अपनी एक सम्मति का भाव-विशेष लिख दिया जाय, अथवा कोई प्रस्ताव करके विषय को छोड़ दिया जाय, और पाठक अपनी अपनी रुचि के अनुसार उस पर विचार करते रहें।

लेख-भाग

१—सूर्योदय

[सुबोध शैली में]

विचार-सूची :—

(१) उषःकाल और खेतों की शोभा।
(२) बागों की बहार।
(३) सरोवर का तट।
(४) समुद्र और आकाश।
(५) पहाड़ों का दृश्य।
(६) प्रकृति के पाठ।

पौ फट गई। सूर्य उगने लगा। चारों ओर उजियाला छागया। अँधेरे में चैन उड़ानेवाले उल्लू छिप गये। चमगीदड़ उलटे पाँव जा लटके। जिधर देखिए उधर निराली ही शोभा दिखाई देती है। खेतों पर बहार ही बहार है। हरियाली से हृदय को बड़ा हर्ष होता

बागों में पेड़ों पर पखेरू चहक रहे हैं। कोमल पत्तियाँ हवा में हिल-हिलकर लहलहा रही हैं। फूल फूले नहीं समाते। हँस-हँसकर लोगों को हँसा रहे हैं। वृक्षों की कुञ्जों पर बेलों के रंग बिरंगे बूटे बड़े सुहावने लगते हैं। फलों की शोभा दूनी हो गई है। जी चाहता है कि टकटकी लगाकर इन्हीं को देखते रहें।

सरोवर के तट पर बैठने से कैसा आनन्द मिलता है। खिले हुए कमलों पर भौंरों की गुञ्जार रागिनी-सी अलाप रही है। चकवा चकवी उछल-उछलकर गले मिल रहे हैं। नहानेवाले बड़े तड़के ही आगये हैं। उनके गोता लगाने से जल में जो लहरें उत्पन्न होती हैं कैसी मनोमोहक हैं। सूर्य भगवान् को अर्घ्य देते हुए पूजा-पाठ-करनेवालों का दर्शन भी बड़ा ही भव्य है।

समुद्र के धरातल पर तो सूर्य-देव पानी से निकलते जान पड़ते हैं। उनकी किरणें दूर दूर तक फैलकर पानी के ऊपर एक विचित्र ही छवि दिखाती हैं। कहीं कहीं उठती हुई छिन्न-भिन्न लहरों में तो कई कई रंग एक साथ ही दिखाई देते हैं। ऊपर बादलों को छूकर किरणों ने कैसी कैसी आकृतियाँ बना दीं। समझ नहीं पड़ता ऊपर को देखें वा नीचे। दोनों ओर एक से एक बढ़कर सौन्दर्य है।

पहाड़ों की बर्फ़ से ढकी हुई चोटियों पर तो जादू-सा हो रहा है। अभी लाल, अभी हरा, अभी पीला, अभी बैंगनी कैसे कैसे रंग बदल रहे हैं कि आँख धोखा खा जाती है। [illegible]

जिस प्रकार प्रकृति के अङ्गों में सूर्योदय से नया रस उत्पन्न होताहै, उसी प्रकार हमारे शरीर से भी आलस्य दूर भाग जाता, और फुर्ती आने लगती है। हम कुछ देर तक घूमते फिरते प्रातःकाल की वायु का सेवन करते, और नया बल लेकर कार्य मे जुट जाते हैं। सूर्य भगवान् स्वयं दिनभर अथक परिश्रम करके हमें परिश्रम और अभ्युदय का पाठ पढ़ाते हैं।

२—सूर्योदय

[अलंकृत शैली में]

विचार-सूची :—

(१) प्रकृति का आँगन।

(२) प्राची दिशा।

(३) नदी का तट।

(४) वृक्षों के शिखर।

(५) हिम से ढकी हुई चोटियाँ।

(६) अन्य विहार-क्षेत्र।

प्रकृति के आँगन में सूर्य-चन्द्र, तारे-नक्षत्र, बिजली-बादल, नदियाँ-सागर, झरने-सोते, वन-जंगल आदि की बाल-क्रीड़ा होती ही रहती है। जिधर देखिए उधर ही आँखें —

सुहावना, कितना मनोरम, कितना रमणीय कि देखते देखते हृदय लोट-पोट हो जाय। मनुष्यों की तो बात ही क्या उसे देख कलियाँ तक खिल जाती हैं। उस प्रकाश-पुञ्ज में अद्भुत आह्लादिनी शक्ति है।

प्राची दिशा की रंगभूमि में जिस समय वह फुटबाल उछलती दिखाई देती है, आँखें उस उछालनेवाले खिलाड़ी के दर्शनों को आतुर हो उठती हैं। उसके किरण-जाल में प्रफुल्लता की तरङ्गें अठखेलियाँ-सी करती चली आतीं, और अन्धकार की छाती में तीर की तरह चुभ जाती हैं। हमारी नाड़ियों में नये रक्त का संचार होने लगता, और कार्य का समय आरम्भ हो जाता है।

किसी नदी के तट पर खड़े हो जाइए। बाल-रवि का प्रतिबिम्ब पानी में लोट-लोटकर नहाता, और अपने सुनहरी बाल सुखाता प्रतीत होता है। कमलों की पत्तियों पर पड़ी हुई ओस की बूंदों में मोतियों का भान होता है। फूलों के ओठ खुल जाते, और पँखु-ड़ियाँ खिलखिलाती-सी दिखाई देती हैं। भौंरों की गुञ्जार भगवान् भास्कर के गुणों का गान-सा करती है।

हरे हरे वृक्षों की चोटियों पर हरियाली और लाली का सुन्दर समागम नयनों को अपूर्व आनन्द देता है। ऐसा जान पड़ता है मानों अंशुमाली का स्वागत करने के लिए वे अपने पाणि-पल्लव पसार रहे हों। उन पर बैठे

बर्फ से ढकी हुई हिमालय की चोटियों पर उषा का प्रकाश पड़ते ही एक अलौकिक अभिनय होने लगा। वह चाँदनी के सरोवर से निकली हुई श्वेतता क्रम क्रम से अरुणिमा में परिवर्तित हो गई। आँखें उठ न पाईं कि हरा, पीला, बैंगनी, नारंगी आदि बहुरंगी दृश्य दीख पड़ा, और चोटियाँ इन्द्र-धनुष का उपमान बन गईं। ऐं, यह माया भी हटने लगी! फिर वही श्वेतता, परन्तु प्रकाश में कुछ कुछ धुँधली-सी दिखाई दे रही है। क्या कोई नट है, जो इस नाट्य की नक़ल उतार दे?

सागर के विशाल वक्षस्थल पर, वन, उपवन की अन्तर-पटी में तथा मरुस्थल की विशाल गोद में सर्वत्र ही सूर्योदय के साथ अभ्युदय की झलक आने लगती है। उमंगों का स्रोत उमड़ पड़ता, और खेलने के लिए मैदान खुल जाता है। खेलनेवाले हँसते हँसते उस मैदान में कूद पड़ते, और जीवन का आनन्द लूटते हैं।

३—मेरी सिंहगढ़-यात्रा

पूर्व विचार :—

(१) प्रस्तावना,—तानाजी का आत्मोत्सर्ग।

(२) सिंहगढ़ की स्थिति।

(३) पूना से प्रस्थान और मार्ग के दृश्य।

(६) ऊपर के दृश्य — ताना जी की समाधि शिवालय जलाशय, आदि

(७) उतरना ।

एक असहाय अबला सिंहगढ़ के पहाड़ी दुर्ग में औरंगजेब के सिपहसालार उदयभानु के पञ्जे में पड़ गई थी। उसने छत्रपति शिवाजी को सन्देश भेजा, कि आप आकर इस अत्याचारी से मेरी धर्म-रक्षा करें; यदि आज की रात और बीत गई तो मेरा त्राण असम्भव हो जायगा। जिस समय यह सन्देश आया, महाराज शिवाजी एक और दुर्ग को विजय करने में लगे हुए थे उनके वीर सामन्त तानाजी के हाथ में सन्देश-पत्र पहुँचा तो उस सुभट के भुज-दण्ड फड़क उठे। परन्तु सेना और सिपाही कहाँ? केवल दो सौ मावला जाति के वीर साथ लेकर वह आधी रात के समय दुर्ग के समीप पहुँचा। निशा के गहन अन्धकार में अगम्य पर्वत की चोटी पर चढ़कर उस अबला की रक्षा में, उन मुट्ठी भर वीरों ने जिस प्रकार अपने प्राण बलिदान किये, और शाही सिपहसालार का वध किया, वह वीर-गाथा मेरे हृदय में बहुत पहले ही सिंहगढ़-दर्शन की बलवती इच्छा उत्पन्न कर चुकी थी।

जिस समय मैं पूना पहुँचा, वर्षा हो रही थी। श्रीयुत केलकर ने मुझे सम्मति दी कि यह समय सिंहगढ़ जाने के लिए अनुकूल नहीं है। परन्तु, फिर ऐसा संयोग

ही चले जाते हैं। पश्चिमी घाट की सुहावनी श्रेणी और शीतल समीर उन्हें वहाँ खींच ले जाती हैं। इसके अतिरिक्त स्कूल तथा कालिज के विद्यार्थियों और अनेक यात्रियों तथा मित्रों की गोष्ठियाँ आनन्द मनाने के लिए वहाँ जाती आती रहती हैं।

पूना से सिंहगढ़ जाने आने में पूरा दिन लग जाता है। इस लिए कुछ फल और चिउड़ा (चावल और मेवाओं का एक प्रकार का स्वादिष्ट चबेना) लेकर मैं ताँगे पर सवार हुआ। वर्षा के कारण पहाड़ी मार्ग बहुत बिगड़ जाता है, इस कारण ताँगेवाले ने बारह रुपये लिये। मार्ग में महाराष्ट्र प्रान्त के ग्रामों की छटा देखने को मिली। वही पुराने ढंग का हल, और प्रायः यहाँ की-सी ही बसावट सर्वत्र है; । छोटी छोटी बातों में कुछ अन्तर भले ही रहे। ताड़ के वृक्ष बहुत दिखाई देते हैं, कहीं कहीं तो इनके बाग़ हैं। पूछने से पता लगा कि यहाँ के लोग ताड़ी बहुत पीते हैं।

ग्यारह मील चलने से पश्चात् मोठा नदी का बाँध दृष्टिगोचर हुआ। यह नदी पूना के समीप ही होकर बहती है। अँगरेज़ों ने बाँध लगाकर इसकी धारा को यहाँ रोक दिया है। दोनों ओर छोटे छोटे पहाड़ों के बीच में नदी का रुका हुआ जल घने बीच में फैला हुआ है। इस लम्बे चौड़े जलाशय को झील कहना अनुचित होगा। जिन्होंने नरोरा पर गंगा का पुल देखा है, वे इसकी कुछ कुछ कल्पना कर सकते हैं। यहाँ पहाड़ियाँ होने के कारण ...

ँ लोहे के फाटकों के सुदृढ़ बाँध के ऊपर से गिरता हुआ सलिल
ह् झरनों का अद्भुत आनन्द देता है। ऊपर से गिरते हु
ो की धारा जब नीचे आकर छिन्न भिन्न होती है, तो ऐस
न पड़ता है मानो किसी ने मोतियों के ढेर बखेर दिये हों। जिध
र दृष्टि जाती, उधर ही चाँदनी-सी छिटकी जान पड़ती है।

इस मनोहर दृश्य को देखकर मैं फिर सिंहगढ़ की ओर बढ़ा
भग एक मील तक तक तो एक ओर पहाड़ी और दूसरी ओर इ
ल का दृश्य सामने रहा। तब एक मोड़ आया। दोनों ओर वृच
हृदय-हारिणी शोभा, और सामने उठते हुए सिंहगढ़ की सि
य ही धज मन में न जाने क्या क्या भाव उत्पन्न कर रही थी
प्रकाल के चार बजे से इस वन में सिंहों का भय उत्पन्न हो जात
मैं एक बजेके लगभग सिंहगढ़के नीचे पहुँचा। ताँगेवाले ने कह
बू जी, शीघ्र ही लौट आइएगा नहीं तो आप मुझे या मेरे घो
न पावेंगे, कोई सिंह आकर समाप्त कर देगा।" इतने ही में ताँगे
खड़ सुनकर मावली कुली दौड़ आये, और 'खुड़ची, खुड़च
कर मुझे घेर लिया। मैं कुछ न समझा, ताँगेवाला भी
झा सका। मैंने लाने का सङ्केत किया, तो एक कुरसी ले लो
लाये। अब मैं समझा कि ये लोग कुरसी को खुड़ची कहते
। इसी पर बिठाकर ये लोग यात्रियों को ऊपर ले जाते हैं
ढ़ाने और उतारने का किराया तीन रुपया गवर्नमेंट की ओर

ाये। मन्दिर दुर्गा वा काली का था। उस निर्जन स्थान में
े काले मावलियों से घिरा हुआ मैं, वहाँ की भयङ्करता का
ुभव कर रहा था। उनकी भाषा थोड़ी-थोड़ी, सो भी अनुमान
समझ लेता था। एक छाया में मुझे खड़ाकर वे लोग भीगते
। दीनता उनके चहरे पर टपक रही थी। उन्होंने बतलाया कि
ाँ के ये क्यारियों के बराबर खेत भी पटवारियों के द्वारा नपे
हैं। हम लोग लगान भी कठिनता से दे सकते, और इस
िद्र वेश में रहते हैं।

वर्षा बन्द होते ही आठ कुली मुझे कुरसी पर विठाकर चले
ाई इतनी कड़ी है कि कहो कहीं तो सीधी दीवार-सी पर चढ़न
ड़ता है। यद्यपि तीन मील ही चढ़ना उतरना पड़ता है, तथापि
ाने में ही छठी की सुध आ जाती है। नैनीताल और मसूरी क
ढ़ाइयाँ इसके सामने कुछ नहीं। मैंने कितनी ही चढ़ाइयाँ पैदल
र की हैं, परन्तु इसे देखकर मैं भी दंग रह गया, और उ
ावलियों की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगा। पर्वत से उतरते हु
फ़ेद साँपों की भाँति अनेक झरने; धुले धुले पत्तों से प्रसन्नवद
े हरे वृक्ष; कहीं कहीं पर नंगे, किन्तु प्रकृति के लाड़िले मुसुकरा
ए मावली बालक मेरे मन में हर्ष की हिलोरें उठा रहे थे। कु
ाल मे ही दुर्ग-द्वार के खँडहर दृष्टि-गोचर हुए, और हम सिंह
ी चोटी पर जा निकले।

त्व के चिह्न देखने चला। वीरवर तानाजी की समाधि देखक
प्रणाम किया। समीप ही एक पक्की दीवार दिखाई दी। ए
ली से मैंने पूछा, तो उत्तर मिला कि यही वह स्थान है जहाँ
जी चढ़े थे। दीवार सिर से ऊँची थी, मैंने ऊपर चढ़क
ना चाहा। वे लोग कहने लगे कि आप भय से नीचे गि
यँगे, ऊपर न जाइए। बहुत कुछ कहने सुनने पर उन्होंने सहा
र मुझे ऊपर चढ़ाया। देखा तो, दाँतों में उँगली दबाई। बा
ाप! चालीस फीट ऊँची खड़ी दीवार, और नीचे बिलकु
ढ़ पहाड़ी। आँखें फट गईं। दिन में भी तो उस पर चढ़
ूज नहीं। फिर आधी रात के अँधेरे में किस प्रकार उन वीरों
ाई की होगी, यह दृश्य मेरी आँखों में घूम गया। कुछ का
लिए मेरे माथे में राष्ट्रवीर शिवाजी के वीर कृत्यों की कल्पन
र काटती रही। उतरा तो मावलियों से पूछा, "क्या तुम अ
इस पर चढ़ सकते हो?" "हाँ" कहते हुए उन्होंने पेट प
थ रखा, और मैं रो पड़ा।

इसके उपरान्त मैं उस शिवालय में पहुँचा, जहाँ वीरश्रेष्ठ शिवा
त्य-प्रति दर्शन को आते थे। एक पुजारी आया, उसने दर्श
ाये। मैंने उसे कुछ पत्र-पुष्प भेंट किये। पास ही मन्दिर

में तैरती हुई लाल, सुनहरी मछलियाँ मन को मोह लेती हैं
ों से पूना तक एक मार्ग-द्वारा इसका जल पहुँचाया गया
र वह पूना में दो कुण्डों में जाकर जमा होता है। अब भी वहाँ
ेक लोग नल को छोड़कर इसी का जल पीते हैं। पेशवा
ाय में इसी का जल राज-भवनों में भी पिया जाता था। मैं
े के तट पर बैठकर जलपान किया। यहीं से टोरना, पन्हालग
दिक दुर्ग दिखाई देते थे। वह पर्वत-माला क्या थी, छत्रपा
ाजी की कीर्ति-पताका ही इधर उधर ऊँची उठ रही थी। कु
न में मग्न था कि मावलियों ने देर होने से सिंह के भय
ा दिलाई।

उतरते समय उन्होंने मुझ से ऊपर की ओर मुँह करके कुर
बैठने को कहा। मैंने हठ किया कि मुझे डर नहीं लगेगा, अ
अच्छी तरह देखता हुआ चलूँगा। परन्तु, उन्होंने न मान
र कहा कि ढाल बहुत है, आप गिर जायँगे। मैंने उन्हीं
ा मान ली, और उतरा तो उसे सच पाया। न मानता
ना तो ध्रुव ही था, कभी कभी नीचे को देखने से भी भ
ता था। कोई मित्र-मण्डली मेरे साथ न थी, इस बात
ाताप करता हुआ, मैं नीचे उतरा। चार बज चुके थे। शी
कुलियों से विदा ले, ताँगे पर चढ़कर चल दिया। मावों

४—पशुओं के साथ कठोरता

विचार-तालिका :—

(१) पशुओं के आनन्दमय दृश्य।
(२) पशुओं का सुख-दुःख का ज्ञान।
(३) गाँवों की दशा।
(४) दुधारू पशु।
(५) अमेरिका और भारत की तुलना।
(६) सवारी के पशु।
(७) रक्त निकालने की क्रिया।

कुदकते हुए घोड़ों की गाड़ी में बैठकर चित्त कैसा प्रफुल्लित होता है। फूलों और हरियाली से जगमगाते हुए जंगल में जाते हुए रथ के बैलों के घुँघरुओं की घोर कैसी श्रुति-सुखद होती है। हृष्ट-पुष्ट गायों की दुहती हुई धार की घर्र-घर्र-ध्वनि मुँह में लार ले आती है। धरती को छोड़कर चलते हुए शिकारी कुत्तों की उड़ान देखकर विनोद की सीमा नहीं रहती। सुनहरी और रुपहरी झूलों के ऊपर रखे हुए रंग-बिरंगे हौदे-सहित हाथी का झूमना देख हमारा भी सिर झूमने लगता है। ऐसे अवसरों पर हम पशुओं के साथ की गई कठोरताओं को भूल जाते हैं। परन्तु, यह सिक्के का चमकता हुआ चहरा है, उसकी दूसरी ओर कुछ और है।

अपने शरीर को सुख पहुँचाना चाहते हैं, और ज्ञान-शून्य होने के कारण शारीरिक सुख ही उनका तो सर्वस्व है। मनुष्यता के विचार से न सही, तो उनकी उपयोगिता तथा सेवाओं के विचार से ही उनके प्रति सदय व्यवहार हमारा कर्तव्य है। इस कर्तव्य का पालन हम कहाँ तक करते हैं, इस पर तनिक दृष्टिपात कीजिए।

गाँवों में जाइए, बैलों की दशा देखिए। दिन भर हल जोतना, पानी खींचना, गाड़ी चलाना उनका काम है। परन्तु, उनके खाने पीने की हमें कितनी चिन्ता है? ठीक समय पर चारा देना या पानी पिलाना तो विरले ही किसान जानते हैं। पानी के लिए तो उन्हें पोखरों में ही छोड़ दिया जाता है, और कभी कभी तो बेचारों को कीचड़ में से चूस-चूसकर पानी पीना पड़ता है। काम लेते समय किसान के हाथ में एक कांटेदार छड़ी रहती है, जिसे वह उनके पिछले भाग में चुभोता रहता है। कितने ही बैलों के पुट्ठों पर इस प्रकार के छेदों का छत्ता-सा बन जाता है। तिस पर उनकी खुराक के लिए साफ और बारीक भूसा भी नहीं दाने के तो दर्शन ही कहाँ? कभी कभी तो पेड़ों की पत्तियों से उनके दिन कटते हैं। जरा बलहीन हुए कि उन्हें बेचकर कटने भेज दिया।

दुधारू पशुओं के साथ दूध देते समय के, और ठाल्ह समय के व्यवहार में आकाश पाताल का अन्तर है। स्वार्थ का इससे अच्छा उदाहरण कहीं भी [illegible]

ता रहा है। वे तो भूमि के टुकड़े टुकड़े को जुताऊ बनाने पर तुले हैं। यदि उनका बस चले तो वे रोटियाँ भी सोना, चाँदी, पीतल, ताँबे की बनाकर खायँ। परन्तु, भगवान् की लीला अनन्त है। कृत्रिमता के इन भक्तों का अधिकार परिमित है। जहाँ चरागाहों की कमी है, वहाँ के पशुओं पर घोर संकट रहता है। बुरे से बुरा चारा, सो भी भरपेट नहीं मिलता। जिनका दूध पी-पीकर हम पुष्ट हुए, काम निकलने पर उन्हीं की इतनी उपेक्षा! कृतघ्नता की हद है। उस समय हम इतना भी तो नहीं सोचते कि स्वस्थ और पुष्ट पशुओं का दूध ही हमारे लिए विशेष हितकर है। आर्थिक दृष्टि से भी निर्बल पशु कैसे अधिक दूध दे सकता है?

सुना है कि अमेरिका में गायों का दूध दुहते समय पियानो (एक मधुर बाजा) बजाया जाता है। गायें उसकी तान में मस्त होकर सारा दूध प्रसन्नतापूर्वक छोड़ देती हैं। ज़रा हमारे यहाँ की कथा सुनने के पूर्व हृदय को थाम लीजिए। कलकत्ते में गायों के छोटे छोटे बछड़ों को इसलिए मार डाला जाता है कि उनके बाँधने को स्थान कहाँ से आवे, और दूध का कुछ भाग भी उनके पेट में चला जायगा। उनकी खाल में भूसा भरकर गायों को यह धोखा दिया जाता है कि मानों उनका बच्चा जीवित है। यह तो पशुओं के अज्ञान से लाभ उठाने की बात हुई। अब और लीजिए। गायें

़ध चढ़ाने में असमर्थ होजाती हैं। यह है हमारी गो-भक्ति
एक नमूना। दूसरा लीजिए। कुछ दिनों तक केवल आमों क
त्याँ गाय को खिलाने से उसके पेशाब में एक प्रकार का ह
पैदा हो जाता है, जो बड़े मोल का होता है। इस लालच
क गायों को केवल आम की पत्ती खाने को दी जाती है
का फल यह होता है कि गाय थोड़े दिन पीछे मर जाती है
रिस कर प्राण निकलना इसे कहते हैं। कहिए, अब भगवा
ण के भक्त हम हैं, वा अमेरिका के वे निवासी जो बाँसुरी व
ति पियानो की तान सुनाकर गायों को सुख देते हैं? तभी
नित्य नया नवनीत खाते, और दूध की नदियाँ बहाते हैं, औ
ारे लिए बन गये हैं बनस्पति-घी, कोकोजिम, और सूअर, त
पों तक की चर्बियाँ।

सवारी और बोझे के पशुओं की दशा पर भी रोना आता है
ाये के घोड़ों में कितने ही ऐसे होते हैं, जो महादुःख भोगते है
ं खुराक तो कम दी जाती है, और काम लिया जाता है अधिक
र तेज़ न चलें तो बड़ी निर्दयता के साथ उन्हें पीटा जाता है
केवालों की घोड़ों की रास में प्राय. चमड़े के तस्मे बँधे रह
जब वे उन्हें घुमाकर मारते हैं तो घोड़ों के मर्म-स्थान पर चो
ती है। कैसा हृदय-विदारक दृश्य है! इक्केवाला तो जीवि

हाँकने की पुकार मचती है। इस प्रकार वे भी पाप कमाते हैं। इस अत्याचार से वे अधिकारी भी नहीं बच सकते, जो ऐसे इक्कों को किसी कारण से पास दे देते हैं। बोझे से लदे हुए बैलों गधों आदि को देखिए। प्रायः उनके पैर एक दूसरे से लगते हैं, और उनमें लोहू से भरे घाव हो जाते हैं परन्तु उनका पीछा नहीं छोड़ा जाता। सामर्थ्य से अधिक लदाई के साथ साथ डंडे का प्रहार मानों उनकी सेवा का उपहार होता है। सच तो यह है कि इस दिशा में हमारा नैतिक पतन इतना हो गया है कि हम मनुष्य कहलाने योग्य नहीं रहे।

माँस के लिए भी पशुओं का बलिदान किया जाता है। इस तुच्छ जीवन के लिए यह कठोर कर्म कहाँ तक उचित है इसे तो विचारशील ही जानें, परन्तु मारने की विधियों पर विचार करना आवश्यक है। हमने अपनी आवश्यकताओं के पीछे, जीव का तो कुछ मूल्य ही नहीं रहने दिया। इतने पर भी हमारी सभ्यता की डींग बड़ी भारी है। अलमाड़ा के पास एक पहाड़ी है। यदि मैं भूल नहीं करता तो उस का नाम मोती पहाड़ी (Pearl-Hill) है। बड़ा सुन्दर नाम है, और काम? "विष-रस भरा कनक घट जैसे"। वहाँ जीवित पशुओं का रक्त निकाला जाता है। किसलिए सो पता नहीं। सरकार की ओर से वहाँ एक कार्यालय है, जहाँ पशुओं को खूब मोटा ताजा किया जाता है।

खिलाया पिलाया जाता है, और मोटा होने पर फिर वही पाश-
विक क्रिया की जाती है। दो तीन बार में बेचारा पशु प्राण दे बैठता
है। कहा जाता है कि रक्त निकालने का यह सुधरा हुआ ढंग है।
अधिक से अधिक रक्त चूसने की इस क्रिया को हम क्या कहें? इस
में सन्देह नहीं कि यह मनुष्यता का नंगा नाच है।

५—उत्साह

विचार-सूची :—

(१) शरीर की चैतन्य शक्ति; उसका प्रभाव।

(२) उत्साह ही जीवन, अनुत्साह ही मरण है।

(३) उत्साह में विश्वास; आनन्द का आश्रय।

(४) अभिमन्यु, नेपोलियन, लव, कुश।

(५) पुरुष-सिंह; परिणाम।

कभी तो हमारा हृदय काम करने के लिए हिलोरें लेने लगता है,
और कभी हम निष्क्रियता की ओर झुक जाते हैं। यह क्यों?
कारण यह है कि हमारे शरीर में जो चैतन्य शक्ति है उसके जाग्रत्
रहने पर तो उमङ्गें उठती हैं; और जब वह किन्हीं अन्य चेष्टाओं
से दब जाती है तो शिथिलता आने लगती है। यों तो जबतक प्राण
शरीर में है, हृदय की धड़कन बन्द नहीं हो सकती; परन्तु उठती
हुई उमङ्गों के समयकी हृत्कम्पन और चेष्टाशून्य समयकी हृत्कम्पन
में बड़ा भारी अन्तर है। एक में चेतनता का और [illegible]

उत्साह ही जीवन, और अनुत्साह ही मरण है। उत्साह
ा हुआ हृदय, भवसागर की बाधाओं की चिन्ता न करता हुआ
प्रकार आगे बढ़ता है, जैसे कोई जलयान समुद्र की अन
जलराशि पर लहराता हुआ जा रहा हो। वह जीवन को खे
मझता है, और सदैव विजय की ही आशा रखता है। इस
परीत, उत्साहहीन पुरुष जीवन-जलनिधि में पड़कर अपने हा
चलाना भूल जाता, और डुप डुप करता हुआ रसातल
र गिरता है। पहला कर्मवीर सिपाही की भाँति कमर कसे हु
र्द्वन्द्व घूमता है, दूसरा कायरता का कङ्काल लिये हुए रक्षा
न ढूँढ़ता है। अनुत्साही की आँखों के आगे सदैव अँधेरा
रा रहता है, और किधर जाय इसी सोच विचार में वह कु
ीं कर पाता। अपना जीवन भी उसे भार हो जाता, और संस
असार प्रतीत होता है। ऐसे ही पुरुषों को जीवन्मृत कहते
र्थात् वे ज़िन्दा ही मुर्दा हैं।

ज़िन्हें उत्साह की शक्ति में विश्वास है, वे सदैव साहस
ारा लेते हैं। कर्म ही उनका विशाल क्षेत्र है, और निरन्त
ोग ही अमोघ अस्त्र। वे विफलताओं से घबराते नहीं, वरन् उन
पाठ सीखकर द्विगुणित उत्साह से काम करते हैं। सिद्धि उन
पीछे चलती है। पराये मुख की ओर देखना वे जानते

-चीत सब में आनन्द की झलक दिखाई देती है, और उनके
रहने से अकर्मण्य भी कर्मशील बन जाते हैं। वे जीवन के
न की बुलबुल हैं, जिनके सुरीले स्वर में अनूठी चहल पहल
है।

बड़े बड़े महारथियों से सञ्चालित कौरव-सेना के सामने जब
और युधिष्ठिर तक मन्दोत्साह हो गये थे, तब सोलह वर्ष का
भिमन्यु चक्रव्यूह-भेदन के लिए आगे बढ़ा था। नेपोलियन सेना
त आल्प्स पहाड़ को पार करके शत्रुओं पर वज्र की तरह
टूटा था। बालक लव और कुश ने जगद्विजयी राम की सेना
छक्के छुड़ा दिये थे। क्या आपने कभी विचार किया है कि
किस शक्ति का प्रभाव था ? यह अदम्य उत्साह की ही महिमा
। यदि यही उत्साह न होता तो आज वायुयानों में उड़ते हुए
काशचारी वीर अपने घरों में पड़े होते। इस उत्साह के पीछे
तने अपने प्राण तक नहीं खो बैठे ! परन्तु, उससे औरों को
नुत्साह नहीं हुआ, वरन् उनका साहस बढ़ रहा है। उत्साही
र सदैव प्राणों को हथेली पर रखकर काम किया करते हैं।

ऐसे पुरुष-सिंहों के विचार और संकल्प दृढ़ होते हैं। उत्सा
बल उनके रोम-रोम में समा जाता है। दृढ़ता रूपी कवच, और
साह रूपी शस्त्र लेकर वे मानसिक दुर्बलताओं की सेना

बुद्धिपूर्वक कार्य करता हुआ आत्मा को प्रकाशवान् बनाता है। यही पतितों को उठाता और मृतकों को जिलाता है।

६—फलदार वृक्ष

(भावात्मक)

पूर्व-विचार :—

(१) सोना और सुगन्ध।
(२) विश्राम-दान; अलौकिक सम्पत्ति।
(३) स्वाभाविकता और कृत्रिमता।
(४) सहवास की इच्छा।
(५) प्रभाव।

सोना और सुगन्ध दोनों का सुयोग यदि कहीं देखने को मिलता है तो फलदार वृक्षों में। भव्य दर्शन, और तत्काल फल कैसा मधुर सम्मिलन है! औरों को फल-दान देकर जीवन का फल इन्हीं को मिला है। धन्य हैं वे प्राणी जो इन्हीं का-सा परकाजी जीवन बिताते हों।

एक ही स्थान पर खड़े हुए, वर्षा, शीत, और घाम सब कुछ सहकर श्रान्त पथिकों को अपनी छाया में विश्राम देने-वाले तरुवर! तुम्हारे इस आजन्म अखण्ड तप की कहाँ तक प्रशंसा की जाय।

उतारकर कितनों ने अपनी प्राण-रक्षा की; तुम्हारी पत्तियों से कितनों का उदर भरा; तुम्हारे ऊपर पत्थर फेंककर कितनों ने फल पाए, और कितने तुम्हारे चरणों में बैठ कर 'बुद्ध' बन गये इसका तुम्हें कुछ पता है ? पर, तुम वैसे ही मुसुकराते हुए खड़े हो; तुमने तो औरों के लिए अपने को घुला ही नहीं भुला भी दिया है। यह नम्रता और वह परोपकार! तुम्हारी इस सम्पत्ति पर कुबेर का कोष निछावर!

पक्षियों के प्राणाधार! मुझे भी अपनी अङ्क में शरण दो। मैं इस सभ्य-जगत् से ऊब गया हूँ। यहाँ से स्वाभाविकता प्राण लेकर भाग रही है। यहाँ तो मसालों की चटपटाहट, मिठाइयों की भर-मार, और षट्रस भोजन के विविध प्रकार जीभ को चैन नहीं लेने देते। आँतों को इतना लादा जाता है, कि वे बोझ के मारे दाँत दिखा जाती हैं, और ब्रुश तथा पाउडर (कूँची और मंजन) के मारे दाँतों की जड़ खोखली हो गई है। शरीर ढकने के लिए तो हमने कीड़ों को मार-मारकर रेशम, और पशुओं को नोंच-नोंच कर ऊन निकाली है। यह सब कुछ करने पर भी बीमारियों की यह दशा है, कि डाक्टरों ने सुइयों से सारा शरीर छेद डाला है।

मैं तुम्हारे पास रहूँगा। पक्षियों का कल-रव मुझे ब्राह्म-मुहूर्त में उठा दिया करेगा। अहा! उस समय नील गगन के नीचे [illegible]लियों में छिपी हुई लाल [illegible]

कहूँ अमरूद, बेर, अनार, सन्तरे, खट्टे. मिट्ठे, नीबू, लुकाट ककड़ी, खरबूज, खीरा, तरबूज इत्यादि समय समय पर मेरे मन को गुलाब-सा खिला देंगे। मैं इनका आनन्द लूटूँगा। डरिए न तोड़ूँगा नहीं। तुम जिन्हें छोड़ दोगे, उन्हीं को प्रसादवत् उठा लूँगा। दाँतुन के लिए तुम्हारी डालियों पर भी हाथ न डालूँगा इस सात्विकी भोजन से दाँत तो यों ही मोती से चमकेंगे। आँत साफ़ होंगी तो दाँत पहले साफ़ रहेंगे। सोने के लिए तुम्हारी पुरानी पत्तियों पर पड़ा रहूँगा, उन्हीं से शरीर ढक लूँगा। तुम तो तोतों से भी नहीं ऊबते हो, जो तुम्हें कुतरते ही रहते हैं, तो क्या मुझे अपने पास न बुलाओगे ?

तुम्हारी तपश्चर्या के प्रभाव से यदि मैंने कुछ सीख लिया तो मेरा जीवन सार्थक हो जायगा। उस में सरलता, स्वाभाविकता, और नियमितता आ जायगी। वहीं मुझे मायाजाल से मुक्ति मिलेगी, और मेरे विचारों में विमलता का वास होगा। मैं वहीं तुम्हारे माली को खोजूँगा, और यदि वह मिल गया तो जीवन्मुक्त हो जाऊँगा। तरुवर! इसी लिए मैं तुम्हें चाहता हूँ, मुझे इसी फल की इच्छा है।

७—आदर्श का प्रभाव

विचार सूची :—

(३) आदर्श का महत्व ।
(४) आदर्श का क्षेत्र ; एकलव्य का दृष्टान्त ।
(५) आदर्श आत्माएँ । नेलसन, प्रताप, नेपोलियन, बुद
ईसा आदि ।
(६) आदर्श के पात्र ।
(७) प्रकृति का परिवर्तन ।

ष्य उन्नतिशील प्राणी है । यद्यपि चिड़ियों के बच्चों की भाँति व
निकलते ही बिना सिखाये उड़ नहीं सकता, तथापि अप
द्ध के बल से उसने जिन वायुयानों का आविष्कार किया
से वह न केवल उड़ने का, किन्तु अनेक विस्मय-जनक का
ता है । उसके ज्ञान का विकास धीरे धीरे, परन्तु सु-दृढ़ता
र चिरस्थायी होता है । मानवीय के ज्ञान के छिपे हुए अङ्कुरों
र से, ज्यों ज्यों अज्ञान का परदा हटता जाता है, त्यों त्
की शक्तियाँ प्रकाश में आती जाती हैं । इस विकास में उस
सपास की परिस्थितियाँ, संगति, शिक्षा, विचारों का आदा
न, अवसरों का सुयोग, और आदर्श का प्रभाव इत्यादि अने
करणों का हाथ रहता है ।

यों तो पशु, पक्षियों को भी सिखाने से वे बहुत से काम कर

ा विचित्र ही प्रभाव पड़ता है। उसकी सोती हुई शक्ति में चम
कार उत्पन्न हो जाता है। जैसे सूर्य-कान्त-मणि पर प्रकाश की किरणें
ड़ते ही वह प्रज्वलित हो उठती है, वैसे ही मानव-बुद्धि मे
ान के आलोक के स्पर्श से एक अपूर्व स्फुरणा उत्पन्न हो जाती
। उसकी दशा वैसी ही होती है, जैसी कि जल की तरङ्गों पर
ल की बूँद की। वह प्राप्त की हुई शिक्षा को न केवल ग्रहण ही
रती, वरन् उसे बढ़ा-बढ़ाकर विविध प्रकार से व्यक्त करने लगती
। इस क्रिया में वह कभी कभी गुड़-रूपी गुरु की चेली शक्कर
न जाती है। विचारशीलों की इस बुद्धि-विचक्षणता के कारण ही
त्त्वज्ञान की उन्नति होती रहती है।

विकास की यह गुप्त शक्ति ईश्वरीय प्रसाद है। इसके उभारने
ं आदर्श से बढ़कर अन्य कोई साधन काम नहीं करता। गुरु की
ाक्षा में शिष्य की बुद्धि की पहिचान, और उसी के अनुरूप शिक्षा
ी योजना का कार्य गुरु के ही ऊपर निर्भर रहता है। सम्भव है
ुरु की परीक्षा में भूल हो जाय, और उसका प्रभाव अभीष्ट के
तिकूल हो। परन्तु आदर्श में इच्छानुरूप गुणों का चुनाव सर्वथा
ीखनेवाले के अधीन है। जिस ओर उसकी दैवी शक्तियों का
ुकाव हो, उधर ही उसे मार्ग मिल जाता है। सीखने का यह
ाग स्वाभाविक है, इसलिए यह सैकड़ों उपदेशों से बढ़कर है।

र निरा उपदेश निराकार के तुल्य। इसलिए पहला सुबोध है
र दूसरा दुरधिगम्य।

आदर्श का क्षेत्र सर्वत्र है। कुटियों से लेकर प्रासादों तक
ढ़ों से लेकर धीमानों तक इसकी महिमा समान है। आचा
ण के धनुर्विज्ञान कौशल की चर्चा जब वन-प्रदेश में पहुँची,
ले-भाले एक लव्य नामक भील के हृदय में महत्वाकांक्षा का अङ्कु
र आया। उसने आचार्य के चरणों पर शीश जा झुकाय
र धनुर्वेद्या-शिक्षण की जिज्ञासा प्रकट की। यद्यपि वंशाभि
न ने उस दीन की उत्कण्ठा को ठुकरा दिया, तथापि आदर्श
की बाँह पकड़ी। वह गुरु द्रोण की प्रतिमा बनाकर श्रद्
हित तीर छोड़ने का अभ्यास करने लगा। फल यह हुआ कि
ने कालान्तर में आचार्य के प्रिय शिष्य तथा अद्वितीय धनुर्
र्जुन की समता कर दिखाई। यह देख द्रोण स्तम्भित रह गये
का नाम पूछने पर भेद खुला, तो उनके आश्चर्य की सीमा
। आदर्श के प्रभाव का यह एक ज्वलन्त उदाहरण है कि
ल अपनी दृढ़ इच्छा के साथ आदर्श क्या कर दिखलाता है।

जिसके सामने उच्च आदर्श है, वही ऊँचा चढ़ सकता है
ी नहीं, वह अपनी पतितावस्था में भी आदर्श की ओर देख
ा अपने को सँभाले रह सकता है। आदर्श पुरुष किसी विशे

। क्या वीरवर नेलसन का पराक्रम केवल इँगलैंड तक ही परिमित है ? क्या महाराना प्रताप की धीरता और वीरता केवल हिन्दुओं की ही सम्पत्ति है ? क्या नेपोलियन का अदम्य उत्साह फ्रांस का ही अधिकार है ? क्या महात्मा बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि के सिद्धान्त एकदेशीय हैं ? कदापि नहीं, इन आदर्शों से समस्त मानव-जाति का उपकार हो रहा है। इन की ओर प्रत्येक होनहार व्यक्ति की आँखें उठती हैं। इनकी आत्माएँ भूतकाल के गर्भ में सो नहीं गईं, वे भविष्य के लिए भी वैसा ही सन्देश दे रही हैं, जैसा कि उन्हों ने अपने जीवनकाल में दिया था। ऐसी ही आत्माओं की पवित्र सौरभ से वायुमण्डल परिपूरित हो रहा है, जिसमें साँस ले-लेकर अन्य आत्माएँ भी पवित्र होती हैं।

आदर्श के इस प्रभाव को देखकर कौन नहीं चाहेगा कि वह भी आदर्श-जीवन बनाने की चेष्टा करे। अपनी अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल आदर्श का चुनाव प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। हाँ, अपनी शक्ति की ओर भी ध्यान रखना चाहिए। जिस प्रकार बिजली बादलों के ही गर्भ में छिप सकती है, उसी प्रकार आदर्श की विद्युच्छक्ति को भी मेघ-गम्भीर पुरुष ही धारण कर सकते हैं। केवल आदर्श के दर्शनों पर मुग्ध होने से काम नहीं चलता। उसकी प्राप्ति के साधन-स्वरूप दृढ़ संकल्प, कर्मशीलता, अध्यव-

क्या बुरी प्रवृत्तिवालों को बुरा ही आदर्श ढूँढ़ना चाहिए, य
एक प्रश्न हो सकता है। जीवन में कभी कभी ऐसे अवस
आ करते हैं, कि प्रवृत्तियों में घोर परिवर्तन हो जाता है
र्षि वाल्मीकि का उदाहरण सब के सामने हैं। किस प्रकार ए
ना ने उनको व्याध से ऋषि बना दिया! यदि बुरी वृत्तिवा
अच्छे आदर्श को ग्रहण करेगा, तो उसकी प्रवृत्ति में परिवर्त
रम्भ हो जायगा; विचारों की शुद्धता उसमें आने लगेगी
र वह अपने आदर्श का पात्र बन जायगा। प्रवृत्ति के अनुकू
दर्श ढूँढ़ने से यह अभिप्राय नहीं कि दुर्गुणों का आदर्श ढूँ
य। पवित्र भावना उन्नति का प्रथम साधन है; दुर्गुण तो पत
पायक हैं। वीरता, देशभक्ति, सत्यता, दानशीलता, सेवा, दय
वित्रता आदि गुण हैं, जो आदर्श के प्राण हैं। आदर्श में अ
णों के साथ किसी एक की प्रधानता होती है। वही गुण हमा
त्ति का पथ-प्रदर्शक, और हमारी उन्नति हेतु होता है।

८—दयानन्द शताब्दी

चार-तालिका:—

(१) शिव-रात्रि-जागरण की घटना।
(२) महर्षि दयानन्द सुधारक रूप में।

(६) यज्ञ-मण्डप।

(७) प्रधान-मण्डप।

(८) अन्य सभाएँ, संन्यासि-मण्डल।

(९) आर्य समाज की सहिष्णुता।

(१०) जलूस।

एक दिन था, जब शिव-रात्रि-जागरण करते हुए एक युव
देखा कि एक चुहिया आती है, और शिवजी के ऊपर श्रद्धा-
हित चढ़ाये हुए भोग का भोग लगाती है। शिव-लिङ्ग ज्यों क
हैं; उसमें देवत्व की कोई प्रक्रिया दृग्गोचर नहीं होती। इ
ना से युवा के अन्तर्पट खुल गये। उसने आर्य-मत के यज्ञाग्नि
लिङ्ग-स्वरूप शिव की प्रतिमा में अन्धकार की एक रेखा देखी
र समस्त आर्य-लोक पर उसका प्रभाव पाया। उसका हृद
त होगया, और इस अन्धकार को मिटाकर जातीय जागृ
ाने का संकल्प उसने किया। वह मोह-निद्रा को भङ्गक
लय वहाँ से चल पड़ा। 'तीन लोक से न्यारी' मथुरा में उ
कोत्तर आलोक मिला। वहाँ उसने श्री स्वामी विरजान
स्वती के चरणों में बैठ आर्य-धर्म का गहन अध्ययन किया
प्रज्ञाचक्षु गुरु ने अपने शिष्य को वह मंत्र दिया, जिस
ई हुई हिन्दू जाति में नवजीवन का सञ्चार किया। उस घट

त थी, यह इन सौ वर्षों ने प्रमाणित कर दिया। उसे हमारी
-मूर्खता पर दया आती थी, और उस पर वज्र गिराने ही में
आनन्द आता था। वह बुरे को बिगाड़ना ही न जानता था
को बनाना भी जानता था। उसकी सूझ बड़ी पैनी थी। व
र किसान था, और सुरुचि-सम्पन्न माली भी। उसे अपने
ी नराना, और पौधों का तराशना खूब आता था। पर व
था। उसके शृङ्गार में—उसकी सजावट में—निसर्ग-रमणीयत
उसमें ललित कला, काव्य, नाटक, आदि को स्थान न था
सुधारक था, धर्म-प्राण था; उसका उद्देश ही और था
मान आर्य-समाज, गुरुकुल आदि उसकी संगठन शक्ति
फल हैं।

उसी का पुण्य-स्मृति स्वरूप, संवत् १९८१ विक्रमीय का शिव
त्रि-सप्ताह भगवान् कृष्ण की अवतार-भूमि मथुरा-पुरी में ब
मारोह के साथ मनाया गया। इस शताब्दि-सम्मेलन की धू
विदेश में मच गई थी, और चारों ओर से आर्य-जनता
ीं, समस्त हिन्दू-समुदाय का समुद्र उमड़ पड़ा था। मथुरा
कराते स्टेशन और नगरी के बीच में मानों दूसरी मथुरा ब
ई थी। दो तीन लाख मनुष्यों की वह निवासस्थली युक्त प्रान्त
ड़े से बड़े नगर की समता कर रही थी। रात के समय यमु

टी स्टेशन से बढ़ते ही थोड़ी दूर पर सीधे हाथ को शताब्दी के
ाविरों की शोभा चन्द्र-ज्योत्स्ना में ऐसी प्रतीत होती थी मानों
थुरा के इस ओर शुभ्र-सलिला भागीरथी ने अपनी बहिन यमुना
घर आकर आतिथ्य ग्रहण किया हो, और उस के तट पर
नियों की कुटीरें बन रही हों।

इतने विशाल समुदाय का प्रबन्ध आर्य-स्वयं-सेवकों द्वारा वहाँ
 नियोजकों ने ही किया था। पुलिस की सहायता नहीं ली गई
ी। फिर प्रबन्ध भी कैसा? आदर्श। स्टेशन से उतरते ही, कोई
केतना ही अनजान क्यों न हो, कुछ कष्ट ही नहीं। तुरन्त स्वयं-
ेवकों से सहायता मिलती थी। ठहरने के लिए, मानों घर में जा
बैठे। खाने पीने का सामान सब सस्ता और सुलभ। भिन्न भिन्न
ान्तों के लिए अलग अलग शिविर थे। प्रत्येक के साथ उन्हीं की
रुचि के अनुकूल पदार्थों की दूकानें खुली हुई थीं। प्रधान बाजार
में सब प्रकार के फल और अन्य खाद्य पदार्थ प्राप्त थे। पुस्तकों
की दूकानें, प्रदर्शनी आदि सभी कुछ था। यह तो था सो था ही, इन
सब के ऊपर थी भ्रातृ-भाव की भावना। जिस प्रेम जिस सहानु-
भूति, जिस उल्लास और जिस सादगी के साथ यहाँ लोग रह रहे

क (watch-words), और वे भी देववाणी में हिन्दू-स्वराज्य-क
दिखाते थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानों किसी सैन्य-शिवि
ड़े हों। ब्राह्म-मुहूर्त्त के आते ही आर्य-गायन की मधुर ता
नों में पड़ती थी। टोलियाँ की टोलियाँ गाती हुई कितनी भव
कहा नहीं जा सकता। नर-नारियों का इतना सुन्दर समागम
हाँ देखने को मिलेगा? आर्य-ललनाओं ने परदे को हटाकर मानो
विद्या का परदा फाड़ दिया था। उस दिन मुझे मालूम हुआ कि
ज हमारा घर हमारा है। धार्मिक जीवन सचमुच सर्वोपरि है
त्मा को उसी में शान्ति मिलती है।

नित्य-कृत्य से निवृत्त होकर यज्ञशाला में जाइए। सुगन्ध
नों सारा संसार महक रहा है। शारीरिक पवित्रता के सा
ःपूतता का कैसा मधुर मिलन है! आर्यों के इस तत्वज्ञान
मुख से प्रशंसा करनी पड़ती है। हवन-गन्ध के साथ वायुमण्ड
मंत्रों की गूँज आत्म-परीक्षा की ओर ले जाती है, और पति
तिपतित भी एक बार उत्थान के लिए अग्रसर हो जाता है
व्य विचारों का यही प्रभाव है।

उत्सव के प्रधान मण्डप में चारों ओर आर्य-जीवन की झल
खाई देती है। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों, संन्यासियों, विद्वा
वेदविदों का रङ्गमञ्च पर समागम बड़ा ही हृदयहारी है

क्या सोचकर गोस्वामी तुलसीदास ने 'बटु-समुदाई' के वेद-पाठ
'दादुर-धुनि' से उपमा दी थी। कहाँ यह लय, और कहाँ वह
टर्र ! इसके अनन्तर उपदेशों की झड़ी लगती थी, और धर्म
ज्ञासुओं की पिपासा उस पीयूष-वर्षण से शान्त होती थी।
ानन्द का दयानन्दत्व सौ वर्ष पश्चात् स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

आर्य-कुमार-सभा, कवि-सम्मेलन, आर्य-स्वराज्य-सभा, अछूतो
र-सभा, शुद्धि-सभा इत्यादि इत्यादि का कहाँ तक वर्णन किय
ाय। सब अपने अपने ढंग के निराले थे। परन्तु, संन्यासियों के
म्मेलन की चर्चा किये बिना आगे न बढ़ा जायगा। भगवाँ वस्त्रो
उस लटक में कुछ अद्भुत ही छवि थी। महर्षि दयानन्द
प्रताप की किरणें उन्हीं मुद्राओं में प्रतिलक्षित हो रही थी। वह
तक सतत झुका रहना चाहता था। महर्षि के सन्देश-वाहक
ःस्वार्थ सेवा के मूर्तिमान अवतार, वेद-ज्ञान के प्रचारक वहीं
र रत्न थे। उन्हें देखकर बौद्ध भिक्षुओं की कल्पना हो आई। 'बुद्ध
रणं गच्छ' का मंत्र स्मरण आ गया। आर्य-जाति! अपने जीव
फल को तूने इन्हीं के रूप में समाज को अर्पण करना सीखा है
ही समर्पण तेरी विश्व-प्रेम की श्रद्धाञ्जलि है।

था आर्य-धर्म के अनुरूप ही था। आरम्भ में आर्य-समाज प
ल-वर्षा करनेवाले अन्य भाई भी उतने ही उत्साह से भा
रहे थे जितने से कि दयानन्दी। सन्देश की पवित्रता, इसी क
ते हैं। संभव है कि कोई इतिहास-प्रेमी अशोक के समय क
द्ध-सम्मेलनों की भाँति, इस आशा से गया हो कि आर्य
ाज अपने धार्मिक सिद्धान्तों में कुछ युगानुकूल परिवर्त
गा, और संसार को कुछ नया सन्देश देगा, और उसे इसमें
निराशा हुई हो। परन्तु, जो कुछ था वह था अभूतपूर्व
र आर्य्योचित भी।

एक बात रह गई। पहले दिन का नगर-कीर्तन, और जलूस
तहास का एक अचिन्तितपूर्व दृश्य था। वेद-भगवान् क
ारी उस मथुरापुरी में निकली, जहाँ भगवान् कृष्ण के भक्तों क
ी है। उसमें जो सफलता हुई, और जो भ्रातृ-भाव प्रदर्शि
या गया उससे प्रतीत होता था कि आर्यसमाज की यमुन
ातन धर्म ही गंगा में किस प्रकार मिल रही है। भक्ति औ
की तरङ्गों का कैसा कौतूहलवर्धक उतार चढ़ाव था। शिवि
लेकर नगर के सिरे तक नर-नारियों की भीड़ इस प्रकार
ी थी, जैसे समुद्र के धरातल पर धाराएँ। यों तो सारा जलू
अनुपम था, परन्तु वेदों की सवारी के पीछे संन्यासियों

सम्मेलन से भारतमाता के उज्ज्वल मुख की कल्पना सहज ही व
जा सकती थी। इतनी भीड़ आश्चर्य-जनक शान्ति के साथ ज
रही थी कि उस पावन गृह के समीप पहुँची, जहाँ ब्रह्मचार
दयानन्द अपने गुरु के पास स्वाध्याय किया करते थे। उस समय
अपूर्व उल्लास था, उस टूटे-फूटे घर की दीवारों को देखकर कौन
कल्पना कर सकता था, कि यहाँ से एक ऐसी आत्मा का उदय
होगा, जिससे समस्त संसार आलोकित हो जायगा? सच है,
"लाल गुदड़ी में नहीं छिपे रहते।"

६—श्रद्धा

विचार-सूची :—

(१) श्रद्धा पर्वतों को भी चलायमान बना देती है।

(२) आचार्य बसु, बुद्ध, शङ्कर, नानक।

(३) सफलता की पहली सीढ़ी; व्यापक लक्ष्य; अटल विश्वास।

(४) आत्म-निर्भरता; परमात्मा का आश्रय।

(५) मधुर फल; दयानन्द, ईसा, गुरु गोविन्दसिंह।

(६) "यो यच्छ्रद्धः स एव सः।" मैज़िनी का उपदेश।

"Faith can move mountains."

किस प्रकार चल-विचल हो जायँगे, इस बात को मानने में साधारण बुद्धि सिर हिलाती है। परन्तु, यदि भाषा के अलङ्कार पर ध्यान दिया जाय तो वास्तव में बाधाओं के पर्वत श्रद्धा के बल से सामने से हट ही नहीं जाते, चूर चूर हो जाते हैं। आश्चर्य नहीं यदि श्रद्धा की अटलता पर्वतों की अचलता को भी दूर कर दे। श्रद्धा के बल का अनुमान भी सहज नहीं। इसने वे वे काम कर दिखाये हैं, जिनकी कल्पना भी कभी किसी ने न की होगी।

श्रद्धा के ही सहारे विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बसु ने वृक्षों में जीव की कल्पना को प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिया। उनके द्वारा आविष्कृत यंत्रों का चमत्कार देखकर योरप, अमेरिका आदि पाश्चात्य देश ओठों पर उँगली रख गये। बुद्ध, शङ्कर, नानक ने संसार की विचार-धारा को पलट दिया। कोलम्बस, न्यूटन, स्टीफन आदि ने क्या क्या कर दिखाया वह सभ्य संसार से छिपा नहीं है। भगवान् कृष्ण ने गीता में सत्य ही कहा है—"श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।" अर्थात् जितेन्द्रिय और तत्पर हुआ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान को प्राप्त करता है। फिर, वह ज्ञान किसी प्रकार का क्यों न हो। बड़े बड़े दार्शनिक, वैज्ञानिक, आविष्कारक, लेखक, शिल्पी, योगी, ऋषि, मुनि, वीर, योधा ही नहीं चोर, डाकू तक श्रद्धा के आधार पर ही अपने अपने कार्य में सफल हुए हैं।

सफलता की पहली सीढ़ी श्रद्धा ही है। —

न का लक्ष्य ऐसा हो कि हमारे समस्त जीवन का समावेश
में हो जाय। वह हमारे रोम रोम में व्याप्त हो; हमारी समस्त
क्याँ उसी के आकर्षण से अनुबद्ध हों। उसमें हमारा अनन्य
हो; दूसरी बात पर हमारा ध्यान ही न जाय। इतना होने पर
की सफलता में हमारा अटल विश्वास हो; कोई शक्ति हमें
की पूर्ति में योग देने से न रोक सके। हम उसी के लिए जियें
ी के लिए मरें। सोते जागते, उठते बैठते, खाते पीते हम उसी
चिन्तन करें।

इस प्रकार का अटल विश्वास होने पर हम आत्म-निर्भरता
म लें। एक बार बुद्धि के बल से ऊँचा और व्यापक लक्ष्
श्चित करके हम अपने नियम आप बनायें। संसार हमारी उ
न पर हँसे वा वाह वाह कहे हमें इसकी चिन्ता न हो। हमार
व केवल एक हो कि हमने उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लि
म लिया है, बिना उसे पूरा किये हमें मरने का भी अवकाश
ीं। उसके बिना हमारा जीवन ही निष्फल है। लोक-विरोध व
य हमारे पास न फटकने पावें। हमारा ध्रुव विश्वास रहे कि
ारे महान् उद्देश की सिद्धि में परमात्मा हमारा सहायक है
वित्र आत्माओं, शुभ कार्यों और महान् उद्देशों की रक्षा भगवान
यं करते हैं। बड़े बड़े कर्तव्यशीलों के सामने ऐसी बाधाएँ आ
ती हैं कि उनके पाँव डिग जाते हैं; निराशा से उनका कलेज

य केवल परमात्मा का हाथ ही उनके सिर पर रहता, और
ं घुटने टेक देने से बचा लेता है। वे मनुष्यों की सहायता की
द्धा करते हुए, उसे प्रति पल अपने समीप पाते हैं। उनकी
ना ही यह होती है कि हम तो निमित्त मात्र हैं, यदि जय है
परमात्मा की, और पराजय है तो उसकी। उसका दया रूपी
श्रद्धा की लहलहाती हुई लतिका को बाधाओं के तप्त झोंक
सूखने नहीं देता।

इन भावों के साथ श्रद्धा वह अभीष्ट फल देती है, जिसक
ुरता हमारे परिश्रम की थकावट को क्षण मात्र में हर लेत
उस समय हम उस अपूर्व आनन्द को प्राप्त करते हैं, ज
र्तव्य-पालन के पश्चात् मिला करता है। हमारी श्रद्धा हमें वह
जाकर बिठा देती है, जहाँ से हम अपने बोये हुए बीजों क
लता फूलता देखकर फूले नहीं समाते। उस समय जो हमा
गों में रोड़े अटकाते थे वे ही सतृष्ण नेत्रों से हमारी ओर देख
नहीं, अपने कर्मों पर पश्चात्ताप करते हैं। स्वामी दयानन्द क
द्धा जब फल लाई, तो उसकी कटुता में कितनी मधुरता थी, इ
एक उदाहरण लीजिए। उस समय एक पुरुष ने उनके पाँ
कड़ लिये, और रोते हुए प्रार्थना कि 'भगवन् मुझे क्षमा कीजि
उन पापियों में से हूँ जिन्हों ने आरम्भ में आपके ऊपर पत्थ
के थे।' ऐसे श्रद्धा-भाजन दयानन्द संसार में कितने नहीं हुए

विद्यार्थियों की श्रद्धा ही उन्हें अध्ययन के अनेक कष्टों सहन कराती और आगे बढ़ाती है। यदि उन्हें सफलता में श्र न होती तो क्यों वे अपने जीवन को कष्टमय बनाते ? उनमें यो यच्छ्रद्धः स एव सः।" अर्थात् जिसकी जैसी श्रद्धा है वह वै ी बन जाता है। अन्तःकरण की प्रवृत्ति पर श्रद्धा का सर्व नेर्भर है, और श्रद्धा की अटलता पर ही हमारे चरित्र का भव नर्माण होता है। इसलिए जीवन को सफल बनाने के लिए श्रद्ध र्वक कार्य करना हमारा परम धर्म है। इटली के उद्धारक महात जिनी का यह उपदेश स्वर्णाक्षरों में अङ्कित करने योग्य है :-

"अपने हृदयों को श्रद्धा से परिपूर्ण करो। केवल मुँह द्धा का नाम न लो, वरन् अपने रोम रोम में श्रद्धा भरो। अप न और वाणी को एकसा बनाओ, अपने आचरणों को पवि रो। अपने लक्ष्य की सिद्धि में तन्मय होकर लग जाओ। अप ीवन को यहाँ तक धर्म-मय बनाओ कि लोग तुमको धर्म की स्पृहता की, लोक-सेवा की अनन्यता की, सात्विक श्रद्धा क लती-फिरती मूर्ति समझने लगें।"

१०—अछूत भाई

विचार :—

(१) मनुष्यता का नाता।

(४) भूल का ज्ञान।
(५) उछाल पाँव को अँगूठे से ही लगाती है।
(६) हृदय का परिवर्तन ; शबरी के बेर।

ुष्य पहले मनुष्य है, पीछे और कुछ। इसलिए मनुष्यता
ता सहज और अविच्छिन्न है। निसर्गजात इस आरम्भि
बन्ध पर कृत्रिमता कितना ही परदा डालती रहे, परन्तु उस
भाविक झलक अन्तःकरण के अन्तरतम प्रान्त में दिखाई दे
रहती है। उत्थान और पतन की प्राकृतिक प्रगति के सा
माजिक रूढ़ियों में भी परिवर्तन हुआ करते हैं। समाज
स्थायिनी नियमावली न आज तक बनी, और न बनने
भावना ही की जा सकती है। पुराना जाता है और नया आ
संसार-चक्र का सञ्चालन योंही होता रहा है। मूलतत्व स
ही रहते हैं—वे परिवर्तन की अभूमि हैं। मनुष्य जाति में मनु
का सम्बन्ध ही सामाजिक सहयोग का मूलतत्व है।

हिन्दू-समाज के परिवर्तन के पतन-काल में छुआछूत का प्र
भर के ऐतिहासिक युग की एक अभूतपूर्व घटना है। इस प्र
भूमि में भेद की भित्ति इतनी स्पष्ट खड़ी दिखाई देती है
अन्धा भी देख सकता है। उच्चता की आड़ में, पवित्रता

न हुए, कैसी कुटिल कल्पना है! इस अमानुषिक दृश्य को देखकर वाणीविहीन पशु-पक्षी भी हमारी श्रेष्ठता (?) पर हँसे बिना न रहते होंगे। कलङ्क-कालिमा के इस प्रादुर्भाव का इतिहास लिखने की आवश्यकता नहीं। वह हमारे समाज का प्रत्यक्ष पाप है—उसका प्रमाण अवाञ्छनीय-सा है।

वे सेवा के स्वर्गीय पथ पर आगे बढ़े; उनके हृदय-क्षेत्र में मानव-समाज की कल्याण-कामना के अङ्कुर प्रस्फुटित हुए। उन्हों ने घृण्यतम कार्य तक से मुख न मोड़ा। पवित्र नामधारियों की पवित्रता की लाज रखी। उन्होंने अपने सुख को, सम्मान को, अपनी गति को, मति को जन-सेवा की वेदी पर उत्सर्ग कर दिया। हमारे चरणों पर अपनी श्रद्धाञ्जलि चढ़ाई, और हमारी रक्षा के विश्वास पर आत्म-समर्पण कर सेवा के सिपाही बने। हमारी आराधना की, हमें आगे बढ़ाया। हमारे दासत्व में उन्होंने जातीय महत्व के दर्शन किये। दास-धर्म को अपना कर्तव्य जान अपनाया। संक्षेपतः वे हमारे जातीय संगठन की नींव के पत्थर बन गये। हम बढ़े और चढ़े उन कन्धों पर जिन्हें आज हम छूते हुए लजाते हैं। हमने उन्हें यही पुरस्कार दिया, उनके प्रति यही कृतज्ञता दिखाई। उनको पहले पतित कहा, फिर दुरदुराया। उनका मुख तक देखना पाप समझा। उनकी छाया तक की छूत लगने लगी। उन्हें पशु से

र दिया। उन्हों ने फिर भी हमारा ही मुँह ताका। हमारी ही शरण टोली, पर हम देखनेवाले अन्धे, सुननेवाले बहरे, और जीवधारी त्थर बन गये। हमारा चमकता हुआ मुख, उछलती हुई छाती, और बढ़ता हुआ पेट पैरों की ओर से बेपरवाह हो गये। उपेक्षित पाँवों ने बहुत कुछ पाँव पटके, पर उन्हें पंगु ही रहना पड़ा।

कौन हिन्दू, हृदय पर हाथ रखकर, यह कह सकता है कि दशा इसके विपरीत है? परन्तु भूल मानव-स्वभाव की सम्पत्ति है। मनुष्य होते हुए भूल न होने का दावा करना विडम्बना मात्र है। महत्तम व्यक्तित्व और समुत्थित समाज कोई भी इस से मुक्त नहीं। फिर, हिन्दू-समाज ही इसका अपवाद कैसे होता? भूल हुई, और बड़ी गहरी हुई। ठोकर लगी; हम गिरे, और मुँह के बल गिरे। छठी तक की याद आई। पाँवों, से कहा, 'उठो'। वे सोगये थे—निर्जीव थे। आह! यह क्या हुआ? अब पता लगा कि हम पतन की पराकाष्ठा की परिधि पर हैं। परन्तु, पतन की पराकाष्ठा ही उत्थान की जन्मस्थली है। हम सोचें, और भूल का परिशोध करें तो अभी बेटी बाप की ही है। बिगाड़ हुआ है, परन्तु वह साधन-सुलभ है।

उछाल पाँव के अँगूठे ही से लगती है। गर्त्त में गिरा हुआ पैरों ही पर खड़ा होकर निकल सकता है। बारहसिंगे के सुन्दर सींग

गा। तभी ऊँचे उठने की आशा की जा सकेगी। नहीं तो, जीवित बाईस करोड़ हम एक और एक ग्यारह के दूने होने पर भी स फूँस के समान ही ठहरेंगे। क्या हमारे और हमारे अछूत इयो के बीच की खाई इतनी चौड़ी होगई है कि हम उसे पाट नही सकते ? क्या हमारे हृदयों की स्पन्दन-शक्ति सुषुप्तावस्था पहुँच गई है ? क्या हमारे अन्त करण की अन्ध-कोठरियों में काश की किरणें पहुँच ही नहीं सकतीं ? क्या हमारे प्रेम और हानुभूति के स्रोत शुष्क हो गये हैं ? यदि नहीं, तो हमारी भुजाएँ छुड़ों को गले लगाने को आगे बढ़ें। हमारे हृदय की नलिकाओं विशुद्ध रक्त का संचार हो। हम मनुष्यता की पवित्र वेदी पर का पुनीत महायज्ञ रचें, और अपने भाइयों को एक सूत्र में थित कर हिन्दू-समाज का मस्तक ऊँचा करें।

बात छोटी पर बड़े विचार की है। हृदय का परिवर्तन ही प्रेम चित्रपाटी होता है। हमारे हृदय में भायप के भावों का समा- श होते ही वायुमण्डल अनुकूल हो जायगा। यदि हमारी वाणी , हमारे विचारों से, हमारे कार्यों से सहानुभूति के स्वाति-बिन्दु पकने लगें, तो अछूत-चातक की रटना फलीभूत हो जाय, और में आश्रयदान का श्रेय अनायास ही मिल जाय। हमारे तुत्व में जान आ जाय, और हमारा समाज भी जग उठे।

वान-सरीखे पशुओं को पास सुलाने की गुँजायश है; जिनके
द्-मन्दिर में प्रभुता के चरण-चाटना पद और प्रतिष्ठा में गण्
है, क्या वे अपना हृदय माता मनुष्यता के सपूत अछूतों के
र नहीं खोल सकते? क्या ऐसा करने से धरती धसक जायगी
वा आसमान फट जायगा? क्या भगवान् की भक्ति का द्वा
की सन्तान की सेवा और उद्धार में नहीं? हम यह कब कह
के आप एकदम अशुद्ध और अग्राह्य पुरुषों के साथ सहभोज
घोषणा कर दीजिए, परन्तु शबरी के बेर खानेवाले मर्या
षोत्तम के आदर्श को तो न भूल जाइए। मनुष्य को मनुष्य
झिए। उनका प्रेम पहिचानिए, और अपना स्नेह सरसाइए
हें पास तो बिठाइए। उन्हें समाज का विभीषण बनने पर विव
कीजिए। हृदयों में उदारता आने दीजिए, और विश्व-बन्धुत्व
र बढ़ने दीजिए।

११—बचपन
[भावात्मक]

ये विचार :—

(१) बचपन की स्मृति।

(२) भोली मुद्रा।

(३) बचपन का अर्थ।

(४) चिन्ता तुम्हारे द्वार से दूर थी।

बचपन ! तुम्हारी स्मृति कितनी प्यारी है। तुम्हारी गोद में न जाने क्या जादू था, जिससे मैं लिपटा रहता था। सुख की वे घड़ियाँ, सरलता के वे विहार, कोमलता की वे क्रीड़ाएँ, अबोधता की वह मुसकान आज स्वप्न की-सी बातें हैं। उस समय लोक मुझे प्यार करता था, और मैं लोक-रञ्जन का खिलौना था; वसुधा ही मेरा कुटुम्ब थी, और मनुष्य ही मेरी जाति; प्रकृति का प्राङ्गण मेरा झूला और पक्षियों का कल-रव ही लोरियाँ थीं। मैं माँ के पलकों पर रहता, और देव-दुर्लभ सुख पाता था। तुम्हारे घर में निर्द्वन्द्व होकर रहा। मेरी 'ठुमुक ठुमुक' चाल से बजती हुई 'पैजनियों' ने कवियों की कल्पना को उत्तेजना दी। मेरी तुतली बोली में मधु-मिश्री घुलकर रह गई। "मैया मेरी कब बाढ़ैगी चोटी।" के वात्सल्य-रस में 'सूर' के पद सुधा-पूरित हो गये।

मेरी भोली और मधुर मुद्रा देख चाँद सिहाता, और किरण-रूपी डोरियों का झूला डाल गोद में उठाना चाहता था। मेरी दशन-कान्ति पर तारे इतने मुग्ध होते कि हँसते हँसते इधर उधर बिखर जाते थे। मेरे ओठों की रेखा कलियों के उर में वह गुदगुदी उठाती थी कि वे फूल फूलकर फूल बन जाती थीं। आह ! क्रूरता की मूर्ति, और शस्त्रास्त्र-मण्डित महायोधा भी मेरी ओर देख मोम बन जाता था; रत्नों की ज्योति से जगमगाते हुए भवन का स्वामी एक

च जाती थी; वीतराग मुनियों के मन में भी ममता हिलोर ले
ती, और कवियों का मनोमयूर तो नृत्य करने लगता था।

तुम से किस कुघड़ी में मेरा वियोग हुआ ? किस छलिया
े तुम से छुटाया ? इस जगज्जाल में पड़कर अब मुझे बो
ा है कि तुम में क्या बात थी, जो सब पर मोहनी डाल दे
। बचपन ! मैं तो समझता हूँ 'बच' का अर्थ है बचना, औ
' दशा का बोधक है, अर्थात् बचने की दशा। किससे बच
दशा ? माया से, छल से, जाल से, प्रपञ्च से, जगड्वाल से
हारा यही अर्थ है न ? अवश्य यही है। अरे ! तभी उ
य 'बचा, बचा' कहकर लोग मुझे पुकारते थे। मैं उस सम
मुच बच्चा था। उन नकटे लोगों ने ही मेरा भी बचप
नकर मेरी नाक काट डाली। अब तो मेरी आकृति ही बिग
, अब मुझ में वह मोहकता कहाँ ?

चिन्ता तुम्हारे द्वार से दूर रहती, और दिन रात खेल कूद
लगा रहता था। वह जीवन ही खेलमय था। कभी छत प
चढ़े, तो कभी पेड़ों की डालियों पर; कभी खेतों की सैर क
कभी मैदानों में गेंद-बल्ला जा खेला। हाथ पाँव निःशङ्क होग
ते थे; न चोट की चिन्ता थी, न थकान का भय। भोजनों
मिलता था, उसी को बड़ी रुचि से खाते थे। स्फूर्ति इतनी

' भय ही न था। साहस के कार्यों में अद्भुत आनन्द आता
। ठोकर लगती थी, उठ खड़े होते थे,मानों कुछ हुआ ही नहीं।
नि-लाभ का ज्ञान ही न था, राग-रोष को जानते ही न थे। भेद-
व का नाम न था, सब अपने थे, पराये का पता ही न था।
गये तो सवेरा ही हुआ, नींद उचटने का क्या काम ? उस
मय हम अवधूत थे; हमारे लिए राजा,रङ्क समान थे; हम अपने
र के सम्राट् आप थे।

जब हमारी किसी इच्छा की पूर्ति न होती थी, तो हम रो पड़ते
। रोना ही हमारा बल—हमारा हथियार था। शायद हम अपनी
शा पर उस समय खिन्न हो उठते थे; हम अपनी उस पराधीनता
भी सहन न कर सकते थे, जो हमारी ही कल्याण-कामना से
रित थी। माँ की चढ़ी हुई भौंहें भी उस समय हमारे लिए असह्य
ं,हमें उनके अन्तर-तल की स्नेह-धारा दृष्टि न आती थी। हमारी
रङ्कुशता हमें अनुभव का ही अङ्कुश मानने को बाध्य करती थी
म उस स्नेह-शृङ्खला से भी स्वतंत्रता पाने को छटपटाते थे। क्या
मारी उसी कामना का फल यह बढ़कर बन्धन है ? क्या उसी के
एड-स्वरूप हमें उस सुख से वञ्चित किया गया है ? क्या वास्तव
वह अपराध इतना गहरा था ? अपराधी का दण्ड-विधान करते

कर उसे ही भूल गये। गोस्वामी जी के मत में भी, "बररे बालक सुभाऊ। इनहिं न संत बिदूषहिं काऊ॥" कदापि यह फल री उस भोली भावना का नहीं। उसके लिए तो हम आज भी ल रहे हैं।

सृष्टि के रंग-रूप देखकर हम भटक गये। हमारा बाल-स्वभाव देख मचल गया, और हमारी हठ हमें वहाँ से हटा लाई। तु, मार्कण्डेय ऋषि की भाँति हमने यह लोक-लीला देख ली। हम जीवन-जलधि की तरङ्गों के थपेड़े खाते खाते अधीर हो हैं। चारों ओर जल ही जल है ओर-छोर का पता नहीं। रा ज्ञान रसातल को चला गया है; अभिमान चूर्ण हो गया है। वन्! हमारे अभिलाषा रूपी वट-वृक्ष के किसी पल्लव पर बसी त-मुकुन्द वेश में आ विराजिए। तभी बेड़ा पार होगा। हम व ही तुम्हारी रङ्गस्थली के बालक हैं, हमें वहीं खेलने दीजिए। ाँ हम आपको रिझाते, खिझाते, त्रिराते रहें।

१२—कलम और तलवार

ं विचार :—

(१) शेर बकरी की लड़ाई।

(५) बीज वपन कलम ही करती है।
(६) दोनों की विजय ; अकबर और तुलसीदास।
(७) प्रेम की विजय।

लम और तलवार की लड़ाई देखने में तो शेर और बकरी
ड़ाई है। तलवार तो दूर, उसका नन्हा-सा बच्चा चाकू भी अ
हे तो कलम के टुकड़े टुकड़े उड़ा दे। भला, कहाँ गिड़गिड़ा
मुँहफटी कलम, और कहाँ चमचमाती हुई पानीदार तलवार
हाँ उसकी 'झड़क् झड़क्' और कहाँ इसकी 'चर चर'? क
सकी बहाई हुई रक्त की नदियाँ, और कहाँ इसके मुँह से टपक
याही की बूँदें ? तुलना की कोई बात भी तो हो! परन्तु, य
टी-सी दो जीभवाली छरहरी नागिनी शेषनाग की सहचरी
ति पृथ्वी को उठाये उठाये फिरती है।

जर्मनी इसके ऊपर तलवार लेकर टूट पड़ा। इसकी लिख
सन्धि की उसने धज्जियाँ उड़ा दी। यह नागिनी चुपचाप प
सर ताकती रही, और चार वर्ष पीछे वरसेलीज़ में वह इं
ा कि जर्मनी से नाक रगड़वा दी। मुन्ना अभी तक पेट के ब
लट रहा है। रूसो और वाल्टेयर के हाथ में पहुँचकर इसने
न बोये कि योरप के सारे सम्राट दहल गये, और फिर महा

ी होता है कि उसका मारा सहज नहीं पनपता। यह विधाता के
ड़ों की भाँति राष्ट्र और समाज के भाग्य-विधाताओं के हाथ मे
य कितने ही भाग्यों का निर्णय करती रहती है।

दोनों ही हमारे हाथ के हथियार हैं। एक बैठे बैठे हृदय
प्रहार करता है, दूसरा रण-क्षेत्र में गर्दन पर। गहरी दृष्टि
देखा जाय तो एक का क्षेत्र बड़ा विशाल, और दूसरे का
ङ्कुचित है। कलम मानव-हृदय की सम्पूर्ण प्रवृत्तियों मे एकसा
म करती है, और तलवार केवल क्रोध तथा रोष की पोषिका
त्र है। तलवार भय की जननी है; क्रोध की प्रतिमूर्ति है। व
ु को अधीन करके बलपूर्वक आत्म-समर्पण कराती है, और
हाँ वह आँख से ओझिल हुई कि विजित वैरी का हृदय विप्लु
रने लगा। कलम श्रद्धा, सहानुभूति, प्रेम, दया आदि का व
ादू डालती है कि हम सदा के लिए उसकी कान पकड़ी छेरी ह
ाते हैं। उसकी विजय चिरस्थायिनी होती है; वह हमें अधी
रके भी हमारी स्वतंत्रता का अपहरण नहीं करती, वरन् च
कसित होने का अवसर देती है।

विराट् रूपिणी कलम जिस समय अपने क्षेत्र में क्रीड़ा कर
, उस समय "जाको रही भावना जैसी। प्रभु-मूरति देखी ति
सी॥" प्रत्यक्ष हो जाता है। कभी वह सृष्टि के सौन्दर्य का चि

भय-विभीषिका दिखाती है, कभी मज्जा, मांस, मलादि के र्शन से अरुचि उत्पन्न कराती है। तो कभी वात्सल्य के प्रसाद में रोचकता को अर्द्धचन्द्र देती है। कभी पीड़ितों के चीत्कार से रुणा के आँसुओं की झड़ी लगाती है, तो कभी भक्ति-रस की मृत-धारा में बहाती है। कभी ओज की उमङ्गें उठाती, कभी पने दुष्कृत्यों पर लजाती है। कभी शान्त लोक में विचरण कराती, ौर कभी माया के प्रपञ्च में डुबाती है। उसकी नोंक से जिस मि को कुरेदा जाय, उसी में भिन्न भिन्न भावों की प्रसूति होने गती है।

तलवार की वीर-गाथाओं का बीज-वपन भी कलम ही करती । जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं, वे अपनी आँखों से बहुत कुछ काम ते हैं, पर तो भी कलम के प्रभाव से वे नहीं बच सकते। रखा खों की तान सुनते ही उनकी भी रगें फड़क उठती हैं, और उनक ाथ तलवार ही पर पड़ता है। वीर भाव का उद्रेक कलम के ह ल से किया जाता है। तलवार का कार्य समाप्त होने पर वीभत्स ाण्ड के दृश्य से जो विराग उत्पन्न होता है, वह भी कलम ह ी कृपा से दूर होता है। कुरुक्षेत्र के समराङ्गण में एक मात्र धनुर्ध र्जुन का गाण्डीव जब हाथ से छूट पड़ा था, तब "क्षुद्रं हृदय ौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप।" कहने तलवार नहीं आई थी, हाँ कृष्ण के रूप में कलम ही बोल रही थी।

तलवार से विजय मिलती, और अखण्ड कीर्ति स्थापित होते

लवार के बल से विशाल-साम्राज्य की स्थापना की, दूसरे
छोटी-सी कोठरी में बैठकर कलम चलाई। दोनों कीर्तिशाल
। परन्तु, गोस्वामी जी जनता के हृदय-सम्राट् हैं। उनक
ाज्य आज भी एकछत्र है, वरन् दिन दिन बढ़ रहा है।
ल भारत के ही नहीं, विश्व के सम्राट् बन रहे हैं। उनक
वार-धारा में डुबकी लगाकर भारतीय सभ्यता और सदाचा
ने दिव्य तेज का प्रकाश फैला रहे हैं। और, अकबर क
ाज्य क्या हुआ? वह अंगरेजों के हाथ में चला गया, उसक
ता विलीन हो गई। तुलसी का साम्राज्य यावच्चन्द्रदिवाक
ा, और उसकी कीर्ति-कौमुदी अनेक हृदयों को शान्ति देत
गी। क्या योरप का कोई भी सम्राट् शेक्सपियर की समता क
कता है?

प्रेम की विजय ही सच्ची विजय है। बाहु-बल की शक्ति क
हा मानकर पराजित पक्ष दब जाता है, उसके हृदय पर विज
हीं प्राप्त होती। उसके दबे हुए भावों का उभार जब अवस
ता है, तो ज्वालामुखी का-सा उद्गार होने लगता है! कलम
द्गार हृदय का उद्गार है। वह सीधा हृदय को छूता है। उ
विजय में मुनियों की शान्ति, और वीरों की कान्ति दोनों
लौकिक घोल-मेल है। वह कुसुम-कोमल, और कुलिश-कठोर

१३—निन्यानवे का फेर

विचार सूची :—

(१) लाला भोलाथ और नन्दू का जीवन।
(२) लालाजी की धर्म-पत्नी का पश्चात्ताप।
(३) लालाजी का उत्तर।
(४) लालाथिन की करुणा।
(५) निन्यानवे की पोटली ; परिणाम।

लाला भोलानाथ की हवेली शहर के अच्छे घरों में गिनी जाती थी। वे बड़े साधु-स्वभाव, कृती और मितव्ययी थे। उनकी धर्म-पत्नी भी दया का अवतार, और भक्ति की प्रतिमा थीं। उनका पुत्र दीनानाथ, और कन्या विमला भी अपने माँ बाप की होनहार सन्तान थे। सब के सब इतना सरल जीवन बिताते थे, कि पास पड़ोस के ही नहीं, नगर के सभी लोग उनका नाम लेते थे। उनके पड़ोस में एक नन्दू हथेरिया भी रहता था। मिट्टी के बर्तन, और खिलौने बनाकर वह चैन की छानता था। जो कुछ कमाकर लाता वह सब खाने पीने में नित्य उड़ा देता था। चार पैसे पीछे डालना तो उसने सीखा ही न था, न उसे कल की चिन्ता थी, न आज का विचार। विपत्ति का वह ध्यान ही न करता था; सन्तान के लिए

तों अतरसों खीर-पाक। लालाजी और नन्दू के जीवन
ना ही अन्तर था जितना कि दोनों ध्रुवों में।

लालाजी की धर्मपत्नी अपने चौबारे से यह सब दृश्य दे
ती थी। एक दिन उनसे न रहा गया, और अपने स्वामी
ने लगीं कि आप इतना कमाते हैं फिर भी खाने पीने में कंजूस
ते हैं। नन्दू की ओर तो देखिए। परिश्रम करता है, औ
वन का आनन्द लूटता है। ऐसी भी क्या, भगवान् धन दे
का उपभोग पूर्णरूप से करना चाहिए। हमारा जीवन इस ध
रखवाली के ही लिए तो नहीं बना है। मैं मानती हूँ कि आ
य समय पर दुखियों की सहायता करने में पीछे नहीं रहते;
अपने शरीर पर उतना व्यय नहीं करते जितना कि आप जै
ी की प्रतिष्ठा के अनुरूप हो। मेरी समझ में तो यह बात आ
शोभा नहीं देती।

भोलानाथ नाम के भोलानाथ थे, पर थे बड़े चतुर। ताड़ ग
श्रीमतीजी का मन भोग के आनन्द ने लुभा लिया है। ऐ
ग्य थोड़े होते हैं, जो जीभ को लगाम लगा सकें। जीभ
ाद के पीछे कितने अपना जीवन नहीं दे बैठे? जीने के लि
ना, और खाने के लिये जीना, इन दोनों का अन्तर ला
लानाथ जानते ही न थे, अपने जीवन में उसका व्यवहार

शरीर नहीं बना, ये तो इसकी रक्षा के साधन हैं। परोपकार लिए भगवान् ने हमें यह शरीर दिया है। यह शरीर औरों के लि भार-रूप न बन जाय, इस बात का ध्यान सब को रखना चाहिए मिताहार और मित-विहार इसके लिए परम आवश्यक है। ऐसा न करने से हम परावलम्बन की ओर झुक जाते हैं। यदि हमारे पाँव सौर से बाहर निकल गये तो ठीक न होगा, "तेते पाँव पसारिए जेती लाँबी सौर।" इससे हमारी स्वाधीनता छिन जाती है, और चिन्ताएँ आ घेरती हैं। चतुरों की दृष्टि भविष्य पर सदैव रहती है। मान लीजिए कि, भगवान् न करे, नन्दू के घर में कल ही से रोग का प्रवेश हो जाय, तो बेचारा क्या करेगा? उस समय इसकी दशा कितनी दयनीय होगी? यह आनन्द में भूला हुआ है, इसे आगे की कुछ चिन्ता नहीं। न बालबच्चों का कुछ ध्यान है, न अपने तन का। ऐसी विचार-शून्यता पशुओं का लक्षण है, मनुष्य को तो भगवान ने बुद्धि दी है।"

यह सुनकर उनका हृदय पिघल गया। नन्दू के अँधेरे भविष्य की कल्पना से लालायिन की आँखों से करुणाश्रु टपकने लगे। वे तिदेव से बोलीं, "तो क्या आप अपने पड़ोसी को यों ही भटकने गे?" "अच्छा, इसकी युक्ति सोचूँगा।" कहकर लाला जी काम को चले गये।

लौटकर आये तो उन्होंने ...

ईश्वर को धन्यवाद दिया। परन्तु खोला तो निन्यानवे ही निकले। उसने सोचा कि एक और हो तो पूरे सौ हो जायँ। पहली बार जीवन में उसे चिन्ता लगी। एक एक, दो दो आना करके उसने रुपया पूरा किया, और सौ की पूरी पोटली को वह सतृष्ण नेत्रों से देखने लगा। फिर सोचा कि ऐसी एक और हो तो कैसा? बस, अब उसने जोड़ना आरम्भ किया। अब हलवा और गुलगुले कहाँ? वही दाल भात और रोटी का सादा भोजन रह गया। ज्यों-ज्यों पोटली में रुपये बढ़ने लगे, त्यों-त्यों नन्दू के भोग-विलास घटने लगे।

लालाजी ने पन्द्रह दिन पश्चात् पत्नी से पूछा कि अब नन्दू का क्या ढंग है। उन्होंने लालाजी की सराहना करते हुए कहा, "नाथ अब तो वह निन्यानवे के फेर में पड़ गया है।"

१४—आलस्य

विचार-सूची:—

(१) "अजगर करैं न चाकरी, पंछी करैं न काम।"
(२) निद्रा का अर्थ; अर्जुन, नेपोलियन, लक्ष्मण, कुम्भकर्ण।
(३) आलस्य के सखा; सिंह का पुरुषार्थ।
(४) दैनिक जीवन; नगर और गाँव की दशा।

"अजगर करें न चाकरी, पंछी करें न काम ।

दास मलूका कहि गये, सब के दाता राम ॥"

ऐसी ही उक्तियाँ हैं, जो आलसियों के मुख से सुनी जाती हैं। अकर्मण्य जीवों को उन्हें सुनकर संतोष भी हो जाता है। परन्तु, उनमें तत्व कितना है इसकी ओर से वे आँखें मूँद लेते हैं। ऊपर के दोहे में ठीक है कि अजगर चाकरी नहीं करते, परन्तु पड़े पड़े मिट्टी भी तो खाते रहते हैं, उन्हें हमारे-से दिव्य पदार्थ भी तो नसीब नहीं होते। इसी से प्रकट है कि अजगर का जीवन धूल चाटने का जीवन है। पक्षियों का काम न करना हमारी समझ में नहीं आता। हाँ, मनुष्य महाशय ने यदि समस्त सृष्टि को अपनी ही बपौती समझ लिया हो, तो संभव है कि पक्षी कुछ नहीं करते, और पराई सम्पत्ति पर हाथ फेंकते हैं। हमें तो पक्षियों का जीवन पुनीत जीवन दृष्टि आता है, हम उसमें पद पद पर कर्मशीलता के लक्षण पाते हैं। उषःकाल में ही सदैव उठकर चहचहाना आलस्य को ढकेल देना नहीं तो क्या है ? दाने दाने को चुनकर खाते हुए फुदकते फिरना स्फूर्ति के झूले में झूलना नहीं तो क्या है ? वहीं फल, मूलादि खाना, सो भी बावन तोले पाव रत्ती, क्या ऋषि-जीवन की सात्विकता की समता नहीं ? अमेरिका का महान् आविष्कर्ता एडीसन दिन रात में केवल दो घंटे सोया करता था

ा हूँ। उन्हीं चिड़ियों को अपने घेरे में घसीटना, हम तो कहेंगे
लसियों की अलस-कल्पना का एक नमूना है।

निद्रा कर्मवीरों को विश्राम देती, और परिश्रम-जनित आलस्य
दूर हटाकर उन्हें चैतन्य बना देती है। वही आलसियों की
ण-स्थली बनकर उन्हें शनैश्चर बनाती है। अर्जुन को गुडाकेश
जाता था। गुडाकेश उसे कहते हैं जिसने निद्रा को वशीभूत
लिया हो। नेपोलियन सात सात दिन तक लगातार घोड़े की
पर चढ़ा फिरता था। जब भगवान् राम और देवी सीता
न करते थे, तब धनुष बाण चढ़ाये और वीरासन बैठे हुए
ग्रीव लक्ष्मण जागते दृष्टि आते थे। तभी तो विजय-श्री उनके
में जयमाल डालती थी। उधर कुम्भकर्ण, रावण आदि की
किससे छिपा है? "कुम्भकर्णी निद्रा" एक कहावत बन गई
जागृति देवत्व की और आलस्य दैत्यत्व की पहिचान है।

आलस्य के आते ही रोग, दरिद्र, विनाश, मलिनता, पराधीनता
दि उसके सखा भी एक एक करके आ जाते हैं। आलसी की
छा शक्ति निर्बल होने लगती, और उसे अपनी शक्ति में अविश्वास
न्न हो जाता है। छोटे से छोटा काम भी उसे पहाड़ प्रतीत होने
। वह भाग्य-वादी बन जाता, और पुरुषार्थ को दूर ही से प्रणाम
रता है। वह नहीं सोचता कि "न हि सुप्तस्य सिंहस्य मुखे

अपने नित्य-जीवन में ही हम आलस्य के कारण कितने कष्ट उठाते हैं, सोचने की बात है। भगवान् के बिना मूल्य दिये हुए अमूल्य पदार्थ शुद्ध जल, वायु आदि का ही सेवन हम में से कितने करते हैं ? यदि प्राण-धारण करने के लिए वे आवश्यक न हों तो, हम तो उन्हें छोड़ ही दें। हमारे सामाजिक जीवन के अनेक दुःखों का मूल भी यही आलस्य है। गाँवों के सादा जीवन में भी आलस्य का इतना प्रवेश हो गया है कि लोग पड़े पड़े हुक्का गुड़गुड़ाते रहेंगे, परन्तु घरों को भली भाँति लीपेंगे पोतेंगे भी न। घूरों की सड़ाँयद सूँघते रहेंगे, परन्तु चार पाँच आसे बढ़ाकर कूड़ा न डालेंगे। शहरों की गन्दगी का तो वर्णन न करना ही अच्छा। चुंगी का संगठन न हो, तो 'नगर' का अर्थ 'नरक' सोलहो आने ठीक उतरे। चुंगी के होते हुए भी बेचारे गरीबों की गलियों में जाइए नरक से कम यातना नहीं। आलस्य इतना कि अपनी बला दूसरों के सिर पर फेंक देना चतुराई समझी जाती है, और कोसा जाता है सरकार को, भाग्य को, कलि-काल को।

औरों की सेवा तो दूर, हम अपने शरीर को भी कभी कभी उतार फेंकना चाहते हैं। कहार नहीं आया, बैठे हैं। क्यों नहायँ शान बिगड़ जायगी। गन्दगी रहे रहने दो, रोग आए आने दो। हम बड़े आदमी हैं, काम करना अपना काम नहीं। कैसे तुच्छ

लजाने लगे हैं। बड़प्पन का यह भाव रह गया है, और पराधीनता प्राण निकाले लेती है। "आत्मदासा तपस्विनः।" अर्थात् तपस्वी अपने सेवक आप होते हैं; आर्यों का यह आदर्श था। परन्तु, अब हम तपस्वी नहीं रह गये; भोगी और फलतः रोगी हो गये हैं। आलस्य ने यहाँ अड्डा जमा लिया है।

यदि इस पापी से पीछा छुड़ाना है, तो आज से हम प्रतिज्ञा करें कि कभी आलस्य न करेंगे। प्रातःकाल आँख खुलते ही शय्या को छोड़कर खड़े हो जायँ, और बिस्तर लपेट कर रख दें। अपने नित्य-कर्म अपने हाथ से करें, उनमें पराधीन न हों। हाथ, पाँव को हिलने दें, और शरीर में फुरती आने दें। अपनी इच्छा को बलवती बनायें, और संकल्प पर दृढ़ रहें। अपने शरीर, अपने मन पर स्वाधीनता प्राप्त करें। तभी हम सच्ची स्वाधीनता पाने के अधिकारी होंगे, और हम न केवल अपना, वरन् औरों का भी कल्याण कर सकेंगे। परमेश्वर से नित्य हमारी पहली प्रार्थना यही हो कि भगवन्! हमें आलस्य से सदैव दूर रखिए।

१५—स्वामी विवेकानन्द

पूर्व विचार :—

(४) संन्यास, योग-साधन।

(५) अमेरिका-इङ्गलैण्ड-भ्रमण; वेदान्त का प्रचार।

(६) कोलम्बो से अलमोड़ा तक।

(७) शरीर-त्याग।

(८) जीवन-विचार।

ाक नरेन्द्र ने ९ जनवरी, १८६२ ई० को जन्म लिया था। यह
ाक पीछे से स्वामी विवेकानन्द हुआ, जिसकी गणना संस
सर्वोत्तम उपदेष्टाओं, और आध्यात्मिक तत्वज्ञानियों में है। व
यस्थ जाति के दत्त-वंश का रत्न था। उसके पूर्वज सरल, भव
र धर्म-जीवन थे। उसके पितामह ने अपने अन्तिम जीवन
यास ग्रहण किया था, और उसके पिता कलकत्ता हाईकोर्ट
ार्नी (वकील) थे। उस बालक की माता विचित्र मेधावती थीं
-वंश की इस गहनभक्ति-परायणता, तार्किक सूक्ष्मदृष्टि औ
ार प्रतिभा में वह बीज छिपा हुआ था, जो स्वामी विवेकान
अङ्कुरित, पल्लवित, कुसुमित और ललित फलान्वित हुआ।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात', यह कहावत नरेन्द्रना
चरितार्थ होती थी। बाल्यकाल से ही उनमें वह सहानुभू

जाता है कि कालिज में पहुँचकर उन्हों ने स्वयं स्पेन्सर को पत्र लिखा, जिसमें उसके कुछ आध्यात्मिक विचारों की तोचना की गई थी। उस पत्र में उन्होंने जिस प्रतिभा का चय दिया था उसे देखकर स्पेन्सर मुग्ध हो गया, और उसने सत्य की खोज के लिए प्रोत्साहित किया।

अब वह समय आया जब नरेन्द्र के विचारो में क्रान्ति उत्पन्न। वे यूरोपीय दर्शन ग्रन्थों को पढ़ते, परन्तु उनके पदार्थ-वाद उनकी तृप्ति न होती थी। वे कट्टर ईश्वर-वादी थे। उनकी ासाकुलित आत्मा सत्य की खोज के लिए छटपटा रही थी बी. ए पास कर चुके थे; क़ानून की तैयारियाँ कर रहे थे न्तु, उनका मस्तिष्क अन्धकार और शङ्काओं से पूर्ण था। उन मनस्ताप का ठिकाना न था। वे ऐसे आध्यात्मिक गुरु क ज में थे, जो उनकी शङ्काओं का निवारण करके अन्धकार क करे।

उनकी चिरकांक्षित आशा पूर्ण हुई; उन्हें दैवी प्रकाश के दर्श ए। नरेन्द्र के एक चचा उन्हें श्री रामकृष्ण परमहंस के पास ये। परमहंस पहुँचे हुए महात्मा थे—उन्होंने आत्मा को ज ाया था। यह नरेन्द्र के जीवन-नाटक का पट-परिवर्तन था। इ ालन मे अद्भुत हृदय-स्पर्शिता थी। प्रथम दर्शन ही ने गु

शिष्यों से परिवेष्टित ध्यानस्थ गुरु की हृत्तंत्री के तार झङ्कार उठे दिव्यानन्द और भगवान् कृष्ण की प्रसन्न आभा से उनका मुख मण्डल आलोकित हो गया; उस गायन-जनित भव्य-दर्शन की कल्पना हमारे शरीर में थरथरी उपजाती, और हिन्दू-हृदय को भक्ति से भर देती है। इस प्रकार गुरु, शिष्य के जीवन-सम्बन्ध का आरम्भ हुआ, जिसने शिष्य के भविष्य-जीवन की अखिल धारा को बदल दिया।

१६ अगस्त, १८८६ ई० को श्रीरामकृष्ण ने अपनी मानव-लीला संवरण की। उस समय उनके अनेक शिष्यों ने सांसारिक जीवन छोड़कर श्री रामकृष्ण-समाज का संगठन किया। स्वामी विवेकानन्द ने भी संन्यास लिया, और वेदान्त-प्रचार के लिए सहर्ष अपना जीवन समर्पित किया। कुछ काल अपने गुरुभाइयों साथ कार्य करके वे हिमालय में योग-साधन के लिए चले गये। तिब्बत पहुँचकर उन्होंने बौद्ध मत का भी अध्ययन किया। फिर समस्त भारत में भ्रमण करके वेदान्त की विजय-पताका फहराई। सी समय मदरास प्रान्त के कुछ लोगों ने शिकागो में होनेवाली र्मिक महासभा में स्वामी विवेकानन्द को भेजने का प्रस्ताव या। चन्दा एकत्र किया गया और

उसके यहाँ कुछ चुने हुए मित्रों का एक भोज होनेवाला था। यह सोचकर कि स्वामीजी का यह विचित्र भेष उनके विनोद का कारण होगा उसने उन्हें भी निमंत्रण दिया। भोज के समय विनोद के स्थान में स्वामी ने अपने मस्तिष्क और हृदय के बल से बुढ़िया के मित्रों को चकित ही नहीं कर दिया, वरन् वे उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। हिन्दू-दर्शन पर स्वामीजी के प्रतिभा-शाली वार्तालाप से उन्हें पता लगा कि उनके लिए उस विषय का समझना भी कठिन है।

फिर क्या था? अमेरिका में उनकी धूम मच गई। धार्मिक महासभा में उन्होंने जिस प्रकार भारत का मस्तक ऊँचा किया, उसपर वहाँ के 'न्यूयार्क हैराल्ड' पत्र ने लिखा था:—

"धार्मिक महासभा में विवेकानन्द निस्सन्देह महान् मूर्ति हैं। इनका भाषण सुनने के पश्चात् हमें अनुभव हुआ कि इस विद्वान् राष्ट्र के लिए धर्म-प्रचारक भेजना कितनी मूर्खता है।"

अमेरिका के अनेक नर नारी उनके शिष्य बन गये। वेदान्त-समाज की स्थापना भी उन्हों ने वहाँ की। उनके शिष्यों में श्रीयुत गेण्ड्सबर्ग (स्वामी कृपानन्द), कुमारी मारगैरेट नोबिल (भगिनी निवेदिता) आदि ने केवल शिष्यत्व ही ग्रहण नहीं किया, वरन् वेदान्त प्रचार में अपनी सम्पूर्ण शक्ति ——

१८९६ ई० में स्वामीजी जन्मभूमि को लौटे, और कोलम्बो में उतरे। कोलम्बो से अलमोड़ा तक के भ्रमण में मातृ-भूमि ने इस प्रकार बाँह पसारकर उनका आलिङ्गन किया कि वह भ्रमण ही एक जलूस-सा हो गया। जहाँ जहाँ वे गये, उन्होंने वेदान्त का मंत्र जनता में फूँका। उनकी सबसे बड़ी इच्छा यही थी कि वेदान्त का सार्वभौम प्रचार हो, और हिन्दू जाति सदाचार, अध्यात्म तथा तत्वज्ञान में समस्त जातियों को प्रकाश दिखानेवाली रहे। स्वदेश में भी इसके लिए उन्होंने प्राण-पण से चेष्टा की। अथक परिश्रम करते करते उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। इसी कारण वे जापान का निमंत्रण भी स्वीकार न कर सके। परन्तु, स्वास्थ्य के पीछे उन्होंने अपना कार्य न छोड़ा।

१९०२ के जुलाई मास में एक दिन मनोरम और शुभ्र प्रभात-काल था। स्वामीजी ने ध्यान-योग किया, फिर संस्कृत में कुछ नवीन शिष्यों को उपदेश दिया। दोपहर पीछे वेद-ज्ञान से आत्म-तुष्टि करके वे फिर समाधि-लीन हुए। संध्या के समय शान्त और नीरव भ्रमण किया। टहलकर लौटे तो प्रार्थना करने बैठ गये, और दिव्यालोक में निमग्न हो गये। रात के नौ बजे उनका अविनाशी महात्मा देह-बन्धन को छोड़कर ऊर्ध्वलोक को उड़ गया।

स्वामी विवेकानन्द के लेख—

सम्पन्न था; उनकी वाणी में गौरव-भरी गूँज थी। वे मनोभावों को बड़ी अच्छी तरह व्यक्त करते थे। इन सब का उपयोग उन्हों ने आर्य-गौरव को बढ़ाने और आर्य-धर्म के प्रचार में किया। उनका हृदय प्रेम और दया से पूर्ण था। उनकी देश-भक्ति भी अगाध थी। वे अपने भाषणों में भारत के शिखरासीन गौरव-काल का वर्णन करते करते हर्षातिरेक से झूमने लगते थे। उन्हों ने वेदान्त को नवीन रूप में रखा। वे वैज्ञानिक विचार-वेत्ता थे; छिद्रान्वेषण उनका काम न था। उन्हों ने जो कुछ ज्ञानार्जन किया सब मातृ-भूमि के चरणों पर चढ़ा दिया। अपने प्रबुद्ध जीवन से वे भारत में नवजीवन भर गये। ऐसे ही सपूत देश का शिर ऊँचा उठाते, और मरकर भी अमर बन जाते हैं।

१६—भारत के साधु और फ़क़ीर

विचार-तालिका :—

(१) धर्म के नाम पर निराली लीलाएँ।

(२) सच्चे साधु।

(३) हमारी मूर्खता।

(४) देवताओं की बाढ़।

(५) साधुओं के विचित्र ढंग।

धर्म-भूमि भारत में धर्म के नाम पर न जाने क्या क्या लीलाएँ होती रहती हैं। कहीं मोक्ष बाँटा जाता है, कहीं पुत्र लुटाये जाते हैं। कहीं पाप धोये जाते हैं, कहीं ताप खोये जाते हैं। कहीं ढोंग से ठगी होती है, कहीं पेट-पूजा की धुन लगी होती है। कहीं ढोलक-खंजरी खटकती है, कहीं भुक्कड़ों की भीड़ भटकती है। कहीं चिमटा चटकता है, कहीं मुँड़चिरा सिर पटकता है। क्या क्या कहें, "नाना वाहन नानाकारा। नानायुधधर नानाचारा ॥" इन नाना भाँति के जीवों को देख एक तो हँसी आती है, और एक कलेजे में कसक उठती है। "ना जानूँ का भेष में नारायण मिलि जाइँ," की बात समझ में आती है, पर इन विराट् भेषधारियों को देख बबूला बन आती है। इनमें श्रद्धा लाते समय न जाने क्यों 'ना, ना' निकलता है।

वह दिन था, जब भारत के गौरव-स्वरूप साधु-संन्यासी सांसारिक झंझटों को छोड़कर अपने पवित्र उपदेशों से संसार का उद्धार करते, और समाज-सेवा के द्वारा मोक्ष-लाभ करते थे। समाज भी उनकी सेवा में अपने को धन्य मानता था। लोगों ने उनके सुख को देखा, त्याग को नहीं; स्वातंत्र्य को देखा, बलिदान को नहीं; वेश को देखा ...

पुनीत पदार्पण से हमारे घर पवित्र होते रहें, यही हमारी कामना है। उनके चरणों पर नत-मस्तक होकर यहाँ नामधारी साधुओं का चित्र हमें खींचना है।

इन नामधारी फ़क़ीरों की मौज का महल हमारी मूर्खता की नींव पर खड़ा है। भारतीय घरों में ही धर्म का स्वरूप बना हुआ है, और वहीं अविद्या का अखाड़ा जम रहा है। गृह-देवियाँ धर्म का सात्विक स्वरूप भूल रही हैं, और भूत-पूजा की ओर बढ़ रही हैं। दान-पुण्य हिन्दू जाति की सदा से विशेषता रही है, परन्तु अब पात्र-विचार का ज्ञान जाता रहा है। हमारा हृदय शीघ्र ही पिघल जाता है, और हम "मनहुँ मींच चोटी गहे, देत बिलम्ब न लाउ।" की पवित्र प्रेरणा में फलाफल का विचार छोड़ बैठते हैं। हमारी इस भूल से हमारे समाज का, हमारे देश का अहित हो रहा है, यह देखकर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं। ऐसी धर्मान्धता अवाञ्छनीय है, उसका समर्थन कोई समझदार नहीं कर सकता।

देवताओं के नाम पर माल उड़ा-उड़ाकर मस्त रहना, और कुकर्म करना कहाँ की साधुता है? स्वार्थ की इस भावना ही ने तो हमारे देवताओं की संख्या बरसाती मेंढ़कों की तरह बढ़ा दी है। कोई जीव, कोई वृक्ष, कोई मूर्ति, कोई जलाशय ऐसा है जिसमें देव-भाव न आया हो? कूड़े करकट की पूजा तक हम करते हैं। कल्यानी, मसानी, काली [illegible]

ाँ तो कुछ ऐसा दिमाग़ का देवाला निकला है कि कोई भी आ
क वस्तु हमारा देवता बन सकती है। जब यहाँ रेलगाड़ी चली
थी, तब लोग उसके एंजिन की पूजा करते थे।

भैरों के भक्त भोपा बनकर लूटते हैं। मुसलमान नादिया क
ा में जीभ, टाँग आदि काटकर जोड़ देते, और गुसांई बनक
र बंभोला करते हुए पुजते हैं। सपेरे, कंजड़ भगवाँ वस्त्र पहन
साधु बनते हैं। कोई कमर में घंटे लटकाकर एक कोड़ा चटका
भक्तों को मूँड़ते हैं। रंग-बिरंगी गुदड़ी पहनकर वा कान फाड़
कोई योगिराज बनते हैं। किसी के हाथ में खप्पर और गले म
ड्डियों की माला रहती है, वे अपने को सरभङ्ग ऋषि की सन्ता
हते हैं। भक्ष्याभक्ष्य को खाकर कोई अघोरपंथी बनते हैं
ई नंगे घूमकर परमहंस पदवी के पात्र बनते हैं। कोई इन्द्रि
नाथकर जितेन्द्रियता का दम भरते हैं। कोई एक हाथ ऊप
उठाकर ही स्वर्ग को चढ़ते हैं। कोई सारे अङ्ग में विभूति लग
र, जटाएँ बढ़ाकर पहुँचे हुए महापुरुष बनते हैं। कोई फे
ाते और कोई कंधे पर कावर लटकाकर 'धनुषधारी राम' क
नि लगाते हैं। कोई चिमटा और चूड़ियाँ लिए घूमते हैं। को
ोतिष वा रमल बताकर माँगते हैं। किसी ने इकतारा, खंज

इनके अतिरिक्त कुछ प्रतिष्ठित नामधारी फ़कीर हैं। ये फ़कीर कह
लाते, पर कर्म-विचार से फ़कीरों से कुछ कम नहीं है। उनमें पुरोहित
डा, गुसांई, सांई आदि है। बड़े बड़े महन्तों की कथा न पूछिए
ड़े हैं; हाथियों पर चढ़कर माँगते है; गद्दी तकियों के सहारे प
ार करते हैं; भोग में योग का दावा उन्ही को है; उनके मठों मे
ारों में, मन्दिरों में, धर्मशालाओं में पुण्य-प्रार्थना के पीछे ज
 होता है, उसे लिखने बैठें तो भारत का एक काला महाभार
 जायगा। 'वहाँ ऊँची दुकान और फीका पकवान', इतने ही
 समझ लीजिए।

माँगते समय का इनका स्वरूप देखिए। वह रूप धारण करें
सी त्यौरी बदलेंगे, ऐसा रंग चढ़ायेंगे, ऐसा स्वाँग भरेंगे कि यदि व
 माँग पूरी न हुई तो न जाने क्या आपत्ति का पहाड़ टूट पड़े। शा
 इनके मुँह पर है, और पाप इनके हृदय में। हमारी धर्म-वृ
ारी इच्छा शक्ति को पोच बना देती है, और हम इन ढोंगियों
मने प्रायः लच जाते हैं। यदि इन देश-कलङ्कों का योंही पोष
ता रहा, तो हमारे नाश के दिन दूर नहीं।

१७—बादल

[भावात्मक]

(३) बल का दुरुपयोग।

(४) नीच प्रकृति।

(५) गुणों की ओर।

ादल ! हवा पर सवार होकर तुम इतने इतरा चले। तुम धनी
ो, बली हो; मानी हो, दानी हो। पर, बावले हो, उतावले हो,
भिमानी हो, अज्ञानी हो। मैं तुम्हें बचपन से देख रहा हूँ
ुम्हारी लीला ही निराली है। बड़े होने पर लोगों में समझ आ
ाती है, पर तुम अपने अल्हड़पन में ही मस्त हो। जब तुम्हारी
अठखेलियों की ओर हम देखते हैं, तब तो बड़े ही नयनाभिराम
ृष्टि आते हो। शरद की मुक्ता-धवल चाँदनी में, चन्द्रमा की किरणों
े झूले पर झूलते हुए तुम हमारे नयनों में झूलने लगते हो
ष:काल में मरीचिमाली के कर-स्पर्श से तुम्हारी आभा कैसी कम
ीय प्रतीत होती है। सांध्य गगन में तुम्हारा पीत-लोहित वर्ण
ौर उसपर बिखरा हुआ सुरम्य रश्मि-जाल गुफा को लौटते हु
ंह की उपमा बन जाता है। तुम्हारा पर्वतीय विहार व्रज
ो-चारण का दृश्य उपस्थित कर देता है। वृक्षों के शिखरों प
ुम मुकुट-से प्रतीत होते हो। पावस में इन्द्रचाप से अलङ्कृ
ुम्हारा गात्र रसिकता से रेखाङ्कित चित्र-सा भान पड़ता है

जीवन धन ! तुम जीवन-वर्षा करके बसुधा में जीवन लाते हो
न्तु, विवेक से काम कम लेते हो । तुम्हारी वर्षा का विशेष भा
लता है पाषाण-भूमि पर्वतोंको वा जलराशि समुद्र को । बाग
ग़चे, खेती-बारी पर तुम्हारी कृपा प्रायः यदा कदा, समय-कुसमय
होती है। और, ऊषर पर मूसलधार गिराने में तो तुम्हा
ठ के पूरे और आँख के अन्धे होने' में सन्देह ही नहीं रहता
हाँ तुम स्वयं पत्थर बनकर गिरते हो, भला वहाँ क्या लाभ उठा
? अपने प्राण जायँ तो जायँ, पर औरों का नाश हो, यह
त है न ?

घनश्याम ! तुम स्वयं काला रूप धारण करते हो, पर का
बिजली बनकर गिरते हो । यह कहाँ का न्याय ? इस जातिद्रो
क्या लाभ ? घुमड़-घुमड़ और उमड़-उमड़कर तुम प्रलय मचा
। तुम्हारा अभिमान तुम्हारे बल के साथ बढ़ता है । इसमें तु
ह की खाकर भी लज्जित नहीं होते । जानते हो कि 'निर्धन
गिरिधारी ,' फिर भी वही अकड़ । बताओ तो, तुमने अप
नायती इन्द्र को लेकर भी ब्रज के ग्वाल-बालों का क्या ब
या था ? उस समय तुम पानी पानी तो हो गये थे, पर डूबक
नहीं। ध्रुव की तपस्या में ही तुमने विघ्न डालने में क्या कस
ी थी ? पर, वह ध्रुव ही रहा, और तुम ध्रुव से ध्रुव तक दौ
ाकर भी अध्रुव ही रहे ।

न से ऊँचे उठ गये तो क्या तुम्हारा स्वभाव बदल गया ? तुम तो
दा से नीचे की ओर जानेवाले रहे हो। ऊँचे चढ़कर कुछ ऊँची
तें भी सीख लो। हवाई घोड़े पर क्या चढ़े, अन्धे बनकर उड़ते
। तभी तो पहाड़ों से टक्कर खाकर तुम्हारे दाँत टूटते हैं। हवा
चक्कर में तुम ऐसे आते हो कि घनचक्कर बन जाते हो।

तुम अपने गुणों की ओर देखो। तुम महादानी हो; सब को
े हो; किसी को विमुख नहीं करते। परन्तु, पात्र-परीक्षा में
चूके हो। चातक ने युग बिता दिये, पर तुम्हारी अनन्य भक्ति
कभी मुँह न मोड़ा। परन्तु आज तक तुमने उसका दुख-मोचन
या ? क्या अब भी उस दीन पर तुम ओले गिराकर अपनी
ठोरता का परिचय नहीं देते ? ऐसा क्यों ? भक्तों की तो भग-
न् भी सुध लेते हैं; परीक्षा की सीमा होती है। तुम केले पर
रो, तो कपूर बनकर संसार को महका दो; सीप के मुख में
रो, तो जगत् को मोतियों से जगमगा दो, खेतों पर गिरो, तो
थ्वी का अञ्चल धानी परिधान से लहलहा दो, और भारतीय
सान प्रजा तुम्हारी छत्रच्छाया में राम-राज्य का अनुभव करने
गे। पर कब ? जब तुम्हारा संकल्प ध्रुव हो, तुम्हें शुभाशुभ का
वेक हो। इसी से तो हम कहते हैं कि तुम बावले हो, उतावले
।

१८—ग्राम्य जीवन के आनन्द

विचार-तालिका:—

(१) अवर्णनीय मिठास।
(२) प्रात काल; जंगल का आनन्द।
(३) दिन का काम; निश्चिन्तता।
(४) संध्या; रात्रि।
(५) बाग; तालाब; खेतों की क्यारियाँ।
(६) शिक्षा, सामाजिक जीवन; स्वाभाविकता।

कोलाहल से दूर, आधुनिक सभ्यता के अछूत, और सरलता के पूत ग्राम्य जीवन में जो आनन्द है, वह नगरों की भन भन में मग्न मनुष्यों को कहाँ प्राप्त ? यद्यपि वहाँ न बिजली के पंखे हैं, न नल का जल; न दमदमाती लम्पें हैं, न मोटर वा रेल का पथ; न मेवे और फलों की मण्डियाँ हैं, न मिठाइयों की दूकान। परन्तु, फिर भी वहाँ कुछ ऐसी मिठास है कि वहाँ सचमुच स्वर्ग का वास है।

प्रात:काल उठिए। घड़ी देखने का काम नहीं। वहाँ तो घड़ी घड़ी प्रकृति अपनी घड़ी लिये खड़ी है। धूप और चाँदनी से ही समय जान लिया जाता है, तारे भी उसमें सहायता करते हैं।

जला देती है। खुले मैदान में शौच-क्रिया से निवृत्त हूजिए। किसी लखपती नगर-वासी का शौचालय भी उतना विस्तृत और स्वास्थ्यकर न होगा, जितना कि ग्राम के कंगला तेली का। कुएँ की मुँडेर पर ताज़ी दाँतुन करते समय, और सद्य पानी से स्नान करके डण्ड लगाते समय तो आनन्द की सीमा नहीं रहती। कहाँ यह वायु-सेवित सतेज ललाट, और कहाँ गन्दगी से भरे नगरों के निवासियों के नीरस चहरे? फिर कहाँ दुहनी से उठते हुए फेन-वाला शीतल दूध, और कहाँ चहकती हुई चाय? कहाँ धौरी के हाँडी से निकली हुई लोनी और छाछ, और कहाँ दुकानों के सिके हुए पकवान?

दिन में गौएँ चराईं तो ब्रज के गोपालों की भाँति क्रीड़ा करते रहे। हल जोता तो परिश्रम द्वारा जीवन सफल किया। काम करना और मगन रहना; न माधो के लेन, न ऊधो के देन। निश्चिन्तता ही इस जीवन का सार है। संसार के छल-छिद्र से दूर रहते हैं। वेद और उपनिषद् का तत्व जीवन में ही मिला हुआ है। भोजन और पहनावा इतना साधारण, इतना स्वाभाविक कि चाहे तो ऋषि-जीवन व्यतीत करें। लोक-हित के लिए तो मानो ग्रामीणों का जन्म ही हुआ है। उन्हीं के परिश्रम की कठिन कमाई पर हमारी भेष-भूषा, खान-पान आदि का आधार है।

ली। बाल बच्चों से बातें कीं। सो गये। गहरी नींद आई
तो वही पुनीत प्रातःकाल। चिड़ियाँ चहक रही हैं, औ
वान् भास्कर मुसकुराते हुए चले आ रहे हैं।

यदि ग्राम के समीप कोई नदी वा तालाब हुआ, तो आनन
ुना हो गया। वहीं पशु भी कलोल करते हैं, और वहीं अप
मनोविनोद हो रहा है। जहाँ बाग़ बग़ीचे हैं, वहाँ के सुख
कहना ही क्या। ताजी ताजी फल खाने को मिल जाते हैं, औ
ोहर दृश्य देखने को। यह कुछ भी न हो तो क्या? खेतों
ारियों में ही केशर के-से फूल खिले रहते हैं। फूली हुई सरस
सुहावना दृश्य मीलों तक पीताम्बरी छटा उपस्थित कर देताहै
मय समय पर रमास और मटर की फलियाँ, चने के होले
ा की भुटियाँ, बाजरे की बालें, महकती हुई सेंदें, खिलते हु
बूजे, रस-भरे पौंड़े, गुड़ की भेलियाँ, मेंथी, बथुए का सा
तर, मूलियाँ प्रत्येक ऋतु के रसमय पदार्थ प्राप्त होते हैं।
ी हुई गाजरों को खाते खाते पौधों में पानी लगाने में जो स्वा
र आनन्द है, वह रसगुल्लों में नहीं।

कहा जा सकता है कि वहाँ शिक्षा की कमी है; ज्ञान-विज्ञा
साधन वहाँ नहीं है। सामाजिक जीवन की विविधता भी क

के ही पीछे हम पड़ गये हैं। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का, एक जाति दूसरी जाति का, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का किस प्रकार गला घोंट रहा है इसे कौन नहीं जानता ? कर्तव्य का क्षेत्र तो ग्रामों में भी कम नहीं, तत्वज्ञान के लिए वहाँ का एकान्त जीवन ही अच्छा है। दुर्व्यसनों से दूर रहने के लिए ग्राम सुरक्षित दुर्ग हैं। जीवन की सरलता, और विचारों की विमलता वहाँ से बढ़कर दुर्लभ है। भ्रातृ-भाव और सहानुभूति की तो वे मानों जन्मभूमि ही हैं। यदि कृत्रिमता के कमनीय कलेवर में हमारी आँखें न उलझ गई हों, तो ग्राम्य जीवन ही स्वाभाविक जीवन है। उसमें सुर-मन-मोहक मधुरता, और बाल-सुलभ सरलता है।

१६—एक प्यारा चरित्र

[लक्ष्मण]

पूर्व विचार :—

(१) चरित्र की आन।
(२) सच्चा स्वरूप।
(३) युद्ध-प्रियता, और निर्भीकता।
(४) नटखटपन और आशा का अङ्कुश।
(५) चारित्रिक [illegible]।

लक्ष्मण ! तुम्हारे चरित्र में एक अनोखी आन है। राम लोक-ललाम हैं; कवि की कृति के नायक हैं। भरत नायक न सही, पर रामायण के प्राण हैं। और तुम ? तुम तुम्हीं हो। तुम्हारी बात में कुछ बात है, और तुम्हारे ढंग में कुछ रंग। तुम राम के अनुजीवन हो। त्याग के तन हो, तपस्या के घन हो; वीरता की मूर्ति हो, पराक्रम की स्फूर्ति हो। तुम सेवा के अवतार हो, भ्रातृ-भक्ति के सितार हो; ओज की ओस हो, श्रद्धा के कोष हो। तुम क्षात्र-तेज के रोष हो, और रण-प्राङ्गण के निर्घोष हो। तुम्हारी तड़प में एक कड़क है, और तुम्हारी वाणी बड़ी बेधड़क है।

तुम्हारे सच्चे स्वरूप का दर्शन हमें स्वयंवर-सभा में हुआ। उपस्थित योद्धाओं पर गाज गिर चुकी थी। क्षत्रिय-समाज राजा जनक की "वीर-विहीन मही मैं जानी" को सह चुका था। तुम्हारे कानों में वह घोर पड़ी, और तुम तड़प गये। राजा जनक ज्ञानी होंगे अपने घर के; विदेह होंगे ऋषियों के लिए, मुनियों के लिए। तुम्हारे लिए वे अनुचित वक्ता थे। क्षत्रियत्व का अपमान तुम्हारा अपमान था——रघुकुल का तिरस्कार था। यह बात सब से पहले तुम्हीं को सूझी। राम के इशारे से तुम लोहू का घूँट पी गये, र तुम्हारे सिंह-गर्जन से आकाश गूँज गया, जनक सिटपिटा ये। "कन्दुक इव [illegible]

चत्र-कुल के काल जामदग्न्य परशुराम के ब्रह्मतेज, और मह
थ के सामने बड़े बड़े योधा तितर बितर होजाते हैं, और तुम
ोद सूझता है। तुम्हारा 'दूध मुख' वहाँ वज्र-मुख बन जाता है
ई डरे, कोई दबे, कुछ हो तुम्हें भय नहीं। तुम्हारे लिए तो ज
ने आये, फिर वह शङ्कर ही क्यों न हों तुम उसे छकाने क
ार हो। तुम वहाँ उसका पद नहीं देखते, मद नहीं देखते। व
हारा प्रतिद्वन्द्वी है, और तुम्हें उससे दो दो हाथ करने में र
ता है। चाहे राम 'नयन तरेरें' वा 'लोक अनुचित पुकारें' तु
में से निकले ही पड़ते हो।

तुम नटखट भी कम नहीं। दास दासियों तक पर हाथ छो
हो। तभी तो मन्थरा की भुन-भुनाहट पर कैकेयी को सन्दे
ा है कि "दीन्ह लषन सिख असि मन मोरे।"। खरे इतने ह
चूकते अपने पिता तक से नहीं। सुमंत्र से दशरथ के विषय
ाने, कुछ अट-सट कह ही दिया। इतने पर भी अङ्कुश मान
। तुम्हारे जीवन-सर्वस्व राम हैं। राम की आँखों का एक डो
हारे रोष रूपी ज्वालामुखी के उभार को झाग-सा विठा देता है

तुम राम को जानते हो, और राम तुम्हें। वन-वास हुआ
ा व्याकुल हो उठीं। बड़े उत्तर प्रत्युत्तर के पश्चात् उन्हों ने रा

र ले गये। तुम्हारे उस मौन में तुलसी ने एक और गीर
ा दी।

तुम्हारी सेवा जीवन-पथ का एक प्रदीप है। राम सीता सो र
और तुम धनुष बाण लिए वीरासन बैठे शरीर-रक्षा कर रहे हो
; दिन नहीं, दो दिन नहीं; एक वर्ष नहीं, दो वर्ष नहीं; पूरे चौद
। यह अनन्य भक्ति जगतीतल पर अलभ्य है। चित्रकूट
के ललाट पर चिन्ता की रेखा झलकी नहीं कि तुमने भर
। धर्म-धुरन्धर को भी उलटी सीधी सुना डालीं। तुम्हारे लि
कट करउँ रिस पाछिल आजू", का अवसर आ गया। तुम्हा
य में उबाल आया, परन्तु राम के "सुनहुँ लषन भल भर
ीसा। विधि प्रपञ्च महँ सुना न दीसा।" कहते ही बैठ गया
केन्धा में राम के "सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी", कहते ही तु
के सिर पर जा धमके। राम की मैत्री का भी खयाल न कर
, उसे खूब फटकारा। पञ्चवटी में तनिक सङ्केत मिला ि
र्पणखा के नाक कान न थे।

मेघनाद-वध में तुम्हारे अखण्ड व्रत और बल का पता चला
सपर इन्द्र का वज्र भी कुण्ठित हो गया था, उसके वध
हीं समर्थ हुए। तुम्हारे शक्ति लगने पर राम का करुण-रोद
हारी सेवा, और उनके स्नेह-सर्वस्व का सजीव चित्र है। तुम्ह
ए "जैहों अवध कवन मुँह लाई" और "जो जनतेउँ बन ब

भ्रातृ-भक्ति में तुम्हारी अनन्यता ही नहीं, अन्धता भी थी सगर्भा सीता को जनशून्य वन में छोड़ते भी तुम्हें आगा पीछा न हुआ। तुम ग्लानि से गल गये; सङ्कोच से दब गये, पर काम कर गये। तुमने भाई का मान निभाया, और अन्त तक निभाया। एक बार सीता के मर्म-वचनों से विद्ध होकर तुम रामाज्ञा का उलङ्घन कर गये थे——सीता को अकेली छोड़ चले गये थे। क्या उसी कारण इस अन्याय पर भी तुम न बोले। राम ने जब सुग्रीव आदि की बात मानकर समुद्र से प्रार्थना करना आरम्भ किया था, तब तुमसे न रहा गया था। "कायर मन कर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।" तुमने कह ही डाला था। यदि सीता-परित्याग पर भी लोकमत के विरुद्ध तुम्हारा स्वर ऊँचा उठा होता, तो हमें तुमसे कुछ कहना न था। कौन जाने तुम्हारे द्वारा उस दुखिया का कल्याण हो जाता। तुम्हारा वहाँ का मौन हमें अखरता है। तुमने स्त्रियों की कोमलता का ज्ञान ही भुला दिया था क्या? ऊर्मिला की तो कभी सुध करते भी हम तुम्हें नहीं पाते। कुछ भी हो, सुमित्रानन्दन! तुम पुण्यवान् हो, एक-तान हो। तुम्हारे चरित्र में एक वीरोचित आन, और भ्रातृ-सेवा के लिए मनुजोचित त्याग है, जिसका लावण्य हमें तुम्हारी ओर खींच ले जाता है।

---

(२) दरिद्रता के दारुण दुःख; विदेश में भारतीय कुली।

(३) "नंगी क्या नहाय, क्या निचोड़े।"

* (४) शारीरिक और मानसिक पवित्रता।

(५) दरिद्रता का उजला अंग।

(६) दरिद्र-नारायण।

दरिद्रता का तो नाम ही बुरा। इस पिशाचिनी के पाश में पड़कर, जो दशा होती है उसकी तो कल्पना करते समय भी रोमाञ्च हो आता है। इसके वेश में ही मलिनता, घृणा, दीनता, दुर्बलता, दुतकार, तिरस्कार आदि का निवास है। दरिद्र को दूर नहीं जाना, उसके घर में ही उसका अनादर होने लगता है। बन्धु-बान्धव और मित्रमण्डली तो पीछे, उसके पुत्र कलत्र तक उसका मुख देखना नहीं चाहते। नीचातिनीच से लेकर नरपाल तक इसके वश में होकर धूल खा जाते हैं। इसके फेर में पड़कर बड़े बड़े धीरों का आसन हिल जाता, बुद्धिमानों की बुद्धि चकरा जाती, और बलवानों की नसें ढीली पड़ जाती हैं। उनकी आँखों के आगे अन्धकार छा जाता, और वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं।

दरिद्रता का दारुण दुःख ज्ञान को हर लेता, और मनुष्य को निकम्मा कर देता है। दरिद्र व्यक्ति के चेहरे से. उसकी आँखों से

कर दया आती, और देखनेवालों पर उदासी छा जाती है। किसी जाति वा देश की दरिद्रता देखकर तो आठ आठ आँसू रोना पड़ता है। भारत, और भारतवासियों की दशा, कहाँ कहाँ हमारा शिर नीचा नहीं कराती ? हमारे पेट की तिल्ली इतनी बढ़ जाती है कि ठेस लगते ही फट जाती है। तपेदिक्, मलेरिया, चेचक, हैजा, प्लेग के तो हम आहार हैं। ये मुँह फाड़-फाड़कर हमारे ऊपर दौड़ पड़ते हैं। विदेश में जाइए, कुलियों के वेश में हमारी दरिद्रता मारी मारी फिर रही है। वहाँ हम कोई राष्ट्र ही नहीं, ब्रिटिश साम्राज्य के एक अङ्ग हैं। जब हम अपने घर में ही दास हैं, तो बाहर की बात ही क्या ? वहाँ हमारे लिए ऐसे ऐसे नियम बन रहे हैं कि हमारा प्रवेश ही वहाँ कठिन हो चला है। मजदूरी के लिए हम, और उपभोग के लिए वे, जिन्होंने हमारे ही हाथों से उन भूमियों को जंगल से उपवन बनाया है।

"नंगी क्या नहाय, और क्या निचोड़े ?" ठीक है। दरिद्रों के मनोरथ भी मन के मन ही में रह जाते हैं। उनकी काम करने की शक्तियाँ मन्द पड़ जाती हैं। अभ्युदय और उत्थान की लहरें उनके मस्तिष्क में पानी की भाँति उठतीं, और वहीं विलीन हो जाती हैं। वे क्या करें ? कोई व्यापार हाथ में लें तो धन चाहिए; कोई उद्यम करें तो साधन चाहिए; खेती करें तो लागत चाहिए। कोई काम ऐसा नहीं, जो विना धन के [illegible]

संगठन से दरिद्रता दूर नहीं हो सकती। अपने पैरों आप खड़ा होना होगा।

३ दरिद्रता का कारण केवल धनाभाव ही नहीं। शारीरिक और मानसिक दरिद्रता भी कुछ कम नहीं। शारीरिक दरिद्रता के कारण हम किसी से आँख से आँख नहीं मिला सकते। हमारा तेज मलिन पड़ जाता, और हम कीड़े मकोड़ों की गणना में आ जाते हैं। हृष्टपुष्ट और ऊँचे पूरे व्यक्ति का प्रभाव ही कुछ और होता है। वह अपने कार्य को भली भाँति सम्पादन कर सकता, और समाज वा राष्ट्र के गर्व का कारण हो सकता है। मानसिक दरिद्रता इससे भी बढ़कर है। एक कहानी प्रचलित है कि सिंह का बच्चा भेड़ों में रहकर में-में करने लगा था, उसकी मनोवृत्ति ही बदल गई थी। सिंह का शरीर रखते हुए भी वह प्रहार करना न जानता था। इसी प्रकार मानव-समाज के मस्तिष्क में जब दरिद्रता घर कर लेती है, तब वह मानव-समाज ही नहीं रह जाता। उसके विचारों में अभिमान, अभ्युदय, स्वतंत्रता आदि के भाव ही मन्द पड़ जाते, और कभी कभी तो मर जाते हैं। भारतवासियों की दास-मनोवृत्ति एक महान् देश के पतन का कारण हो रही है, और बड़े बड़े बलशाली राष्ट्रों के बीच में छोटा-सा स्विटज़रलैंड स्वातंत्र्य-सुख का भोग कर रहा है। यह है मानसिक दरिद्रता का भेद।

बात भी निराधार नहीं। धन की प्रचुरता अनेक दुर्व्यसनों की ओर ले जाती है। आचारिक पवित्रता के दर्शन जितने दरिद्र-कुल में होते हैं उतने सम्पत्तिशालियों के परिवार मे नहीं। धनाढ्य लोकापवाद से भय नहीं खाता, और दरिद्र धर्मभीरु होता है। सत्य है, "दीनहि सब कहँ लखत है, दीनहिं लखै न कोय।" धन के मद में हम अन्धे हो जाते, और अनुचित कर्म करने में भी नहीं लजाते। यही कारण है कि ब्रह्मचर्य आश्रम के तीन पुनीत व्रत रखे गये थे,—(१) दरिद्रता का व्रत (२) पवित्रता का व्रत (३) परिश्रम का व्रत। दरिद्रता के व्रत से हमारा यही अभिप्राय था कि समाज के भावी सेवकों की दृष्टि आरम्भ ही से सब पर रहे। वहाँ समता का भाव रहे, और हम अपने नागरिक जीवन का महत्व जान जायँ।

जो लोग लोक-सेवा की दृष्टि से दारिद्र्य-व्रत धारण करते हैं, वे दरिद्र नहीं। वे तो सेवा के द्वारा सेव्य बन जाते हैं। महात्मा गाँधी ऐसे ही दरिद्र-नारायण है। वे दरिद्र बनकर दरिद्रों को देख रहे हैं। यदि वैसा संकल्प, वैसे विचार, वैसा परिश्रम वैसी पवित्रता, और वैसी धुन हम में भी हो तो न हम दरिद्र रहें, न हमारा देश।

२१—एक छड़ी की आत्म-कहानी

(२) ब्रह्मपुत्र ; भागीरथी-स्नान ।
(३) सागर का गर्भ ।
(४) कोलम्बो से रामेश्वर, बम्बई, करॉंची ।
(५) सेठ के साथ रेगिस्तान में ।
(६) कवि के साथ नैनीताल; जन्मभूमि की दर्शनाभिलाषा ।

मैं अपने पिता ओक की अङ्क में क्रीड़ा करती, और मानसरोवर के रमणीय तटपर विहार करती हुई हंसों की सुन्दर जोड़ियों को देख-देखकर प्रफुल्लित होती थी । ब्रह्मपुत्र का निर्मल नीर मेरे पिता के चरण धोता,और कल-कल-नाद करता हुआ न जाने कहाँ चला जाता था कि फिर लौटता ही न था । मैं कभी कभी सोचा करती कि यों ही जीवन के दिन जाकर फिर नहीं लौटते । स्वर्ण-कमलों की रज से सुरभित पवन के झोंके मेरे कर-पल्लव हिला-हिलाकर मुझे खिलाते थे । निर्मल नीलाम्बर के नीचे बिछी हुई मानस-सर की श्वेत तथा शुभ्र, जल-राशि शुचिता की साक्षात् मूर्ति थी । अनेक मणि-शिलाएँ पड़ी हुई थीं, जिन पर कहीं कहीं मुनियों का मञ्जुल दर्शन मोद का कारण था । हिमाञ्चल की मुक्ता-धवल चोटियाँ और कैलाश के दिव्य दर्शन मेरे सौभाग्य के सूचक थे । दिन रात निराली ही छवि रहती थी । प्रकृति का पुण्य भवन ही मानों वह था । उस शुभ्र तथा शान्त तपोभूमि में जन्म लेकर मैं अपने जीवन

जल की प्रीति हा कितनी ? जो नित्य ही पिताजी का पाद-
प्रक्षालन करता था, वही उनकी समाधि-स्थली बन गया। तल में
पड़े हुए शिला-खण्डों की चोट खाते खाते मैं तो मूर्छित हो गई;
पिताजी का क्या हुआ सो मुझे पता नहीं। मुझे जब चेत हुआ
तो मैंने देखा कि मैं उनकी गोद से बिछुड़कर आसाम प्रान्त के
ब्रह्मपुत्र के मोड़ पर एक खोखल में अटकी पड़ी हूँ। पापी जल !
तू ने क्या किया, किस जन्म का बदला लिया ? कह ही रही थी
कि एक लहर के चपेट में आकर फिर बह निकली। पाण्डवों के
राजसूय यज्ञ की भूमि पाण्डुनगर के दर्शन करती हुई, ब्रह्मपुत्र से
सिञ्चित प्रान्त का अवलोकन करती, और डुबकियाँ लगाती चली
जा रही थी कि पुण्य-सलिला भागीरथी में स्नान करने का सौभाग्य
प्राप्त हुआ। जिस अमृत के लिए सुर-समुदाय तरसता है, उसे
अनायास ही पाकर मैंने अपने दुर्दिनों को भी धन्यवाद दिया।
इस सुख से कुछ संतोष मिला ही था कि डेल्टा की पङ्किल भूमि
में मेरे पाँव फँस गये। गंगा और ब्रह्मपुत्र की धारा भी हटकर
बहने लगी, और मैं वहाँ त्रिशङ्कु बनी अटकी रही। एक एक दिन
करके दो वर्ष बीत गये; सोच लिया कि सड़-सड़कर यों ही प्राण
जायँगे। फिर भी कभी कभी उद्धार की कल्पना किया करती थी।
आशा बड़ी बलवती है, यदि यह न हो तो भय से ही प्राण निकल
जाया करें।

ा पड़ी। वहाँ मेरे ऊपर घोर सङ्कट आया। इधर तो नदी
वाह आगे को ढकेलता था, उधर सागर की लहरें पीछे पछा
ती थीं। उन दोनों के अन्योन्य-मुखालिङ्गन में मेरा बुरी तर
र्षण हुआ। मेरी सारी खाल छिल गई। ज्यों त्यों करके समु
क्रोड़ में शान्ति मिली। इतना विशाल जल-विस्तार मैंने पहले कभ
देखा था। उसे देखकर मेरी दृष्टि चौंधिया गई। परन्तु, तल प
ती हुई नौकाओं और जल-पोतों को देखकर कुछ धैर्य हुआ
मुद्र के तट का अवलोकन करती, और लहरों से टकराती हुई
पने जीवन के दिन पूरे कर रही थी कि एक जलयान की की
हिलग गई। समुद्र के वक्षस्थल को चीरता हुआ वह यान मु
लम्बो ले पहुँचा। वहाँ उसने अपना लङ्गर डाला।

उस बन्धन से मैं इतनी दुखी थी कि मरने की दुआ म
ही थी। इतने ही में एक कारीगर की दृष्टि मुझ पर पड़ी, औ
ह मुझे अपने घर ले गया। तपोवन से छूटकर लङ्का में मु
रण मिली, यह सोच-सोचकर मैं बड़ी खिन्न थी कि उ
रीगर ने मेरा अङ्ग-भङ्ग करके मुझे तपाया। चाकू की नोंक
ी त्वचा को छीला, और मेरा मुँह मोड़कर मेरे ऊपर रंग-
ढ़ा दिया। कर्मों का फल-भोग समझकर मैंने सब कुछ सहा
र उसने मुझे एक सेठ के अर्पण कर दिया। उसके साथ सा

भारत-माता के मुकुट से गिरकर फिर उसके चरण छू मैंने समझा के अभी कुछ पुण्य शेष है। मलयानिल की पूत गन्ध का आनन्द लेती, दक्षिणी भारत का भ्रमण करती, मैं सेठ के साथ बम्बई पहुँची। इस नगर में मैंने मनुष्य की बुद्धि का चमत्कार देखा। शान्ति और अशान्ति की तुलना करने बैठी ही थी कि स्टीमर में बिठाकर कराँची पहुँचाई गई। सेठ अपनी कोठी का निरीक्षण कर वहाँ से अपनी जन्मभूमि जैसलमेर को चला। मार्ग में मरुस्थल की धूल फाँकती, और ऊँट की पीठ पर चढ़ी जा रही थी। उस समय मेरे मनस्ताप की सीमा न थी। 'विधि-गति अति बलवान,' के सिवाय मेरे मुख से कुछ न निकलता था।

इस रेगिस्तान में मेरे निर्वासन के तीन महीने राम राम करके कटे। सेठ फिर दिल्ली को चला, और अपने व्यवसाय की धुन में मुझे दिल्ली स्टेशन पर ही भूल गया। डिब्बे में कोई न देखा, तो एक कुली ने मुझे उठा लिया। वहाँ एक कवि की करुण-दृष्टि मुझ पर पड़ी, और उसने आठ आने पैसे देकर कुली से मुझे मोल ले लिया। मेरे जीवन के दिन कुछ फिरे। वह मुझे अपने साथ लेकर नैनीताल रहता है। मैं प्रातःकाल पर्वतीय प्रान्त में भ्रमण करती और सन्ध्या को तल्लीताल की सैर कर आती हूँ। वह एकान्त भ्रमण करता हुआ जब मुझे घुमाता चलता है, तो मेरे सिरे की नोंक पर उसकी दृष्टि एकाग्र हो जाती, और उसके

कर मैं भी फूली नहीं समाती हूँ। वह भी मुझे प्राणों से प्या
ता है।

अपने मित्रों के साथ वह कैलाश-यात्रा का विचार कर र
यदि ऐसा हुआ, तो मैं फिर कैलाश-दर्शन कर सकूँगी, औ
मान- सरोवर ले जाने के लिए अपनी सारी मौन-शक्ति ल
; और यदि उसमें मैं सफल हो गई, तो जन्मभूमि के दर्श
जाऊँगी। अवसर पाकर कवि के चरण पकड़ लूँगी, औ
नी करुण-व्यथा से उसके हृदय को द्रवित कर मोह-सरोवर
ो डुबकी लगाऊँगी कि फिर न निकलूँगी। सम्भव है मे
ति में उस कवि के कुछ उद्गार भी निकल पड़ें, और मेरा
ा होने से भी बढ़ जाय।

२२—कर्तव्य

े विचार:—

(१) कर्तव्य की महिमा और क्षेत्र।
(२) कहना और करना; कर्तव्य की मूर्तियाँ।
(३) कर्तव्य की कठोरता; राम, प्रताप, हरिश्चन्द्र।
(४) कर्तव्य की मिठास।
(५) कर्तव्य-वीर।

हुआ है, और कुछ कर जाना ही कर्तव्य का पालन है। इस प्रकार करनी के अवसर जीवन में प्राय: आते जाते ही रहते हैं। जिस अवसर पर जो करणीय है, वही हमारा कर्तव्य है, धर्म है, ड्यूटी है, फ़र्ज़ है। करणीय कर्मों की संख्या निश्चित नहीं की जा सकती। अनेक सत्कार्य हैं, जिन में कर्तव्य-पालन के अवसर आते हैं। अपनी अपनी शक्ति के अनुसार उन सत्कार्यों का पूरा करना ही हमारा कर्तव्य है। उदाहरण के लिए, भूखे को अन्न देना कर्तव्य है; गिरते को उठाना कर्तव्य है; दीन-दुखियों की सहायता कर्तव्य है; साधुओं की रक्षा, और पापी को दण्ड देना कर्तव्य है; न्याय पर दृढ़ रहना, और दया दिखाना कर्तव्य है; सत्य, स्वत्व, धर्म, न्याय वा प्रण पर बलि हो जाना कर्तव्य है। इसी प्रकार और भी समझिए। इन कर्तव्यों में कुछ कर्तव्य सामान्य हैं, जो मनुष्य जन्म लेने ही के कारण हमारे धर्म हैं, और कुछ ऐसे हैं, जिनका भार हमने स्वयं अपने ऊपर ले लिया है। दूसरे प्रकार के कर्तव्य हमारे विशेष कर्तव्य कहलाते हैं। जैसे; विद्याध्ययन प्रत्येक व्यक्ति को उचित है, परन्तु वही विद्यार्थी का परम कर्तव्य है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की धारणा के अनुसार कोई कार्य-विशेष उसका प्रधान कर्तव्य बन जाता है।

कहना जितना सरल, करना उतना ही कठिन है। इसलिए कर्तव्य-वीरों को कठिनाइयों के पार करने के लिए सदैव कटिबद्ध

व्य करके उन्हें एक अलौकिक आनन्द का अनुभव होता है, जो
लोक के आनन्दों से कहीं बढ़कर है। अपने चारों ओर ही आँख
लकर देखिए, कर्तव्य की मूर्तियाँ मुसुकराती हुई खड़ी हैं। सूर्य
द्रमा, तारे, नक्षत्र, पृथ्वी, पवन, जल, अनल सब अपने अपने
य में ऐसे लीन हैं मानों इन्हें अपने तन की सुध ही नहीं। क्य
ाल, इनके कर्तव्य में तनिक भी ढील हो जाय या थोड़ी-सी दे
वे थककर बैठ जायँ। जहाँ डट गये, डटे हैं। कर्तव्य के सामने
खिलता, अपनी गन्ध छोड़ जाता, और मुरझा जाता है। चाहे
उपवन में हो, चाहे निर्जन वन में; चाहे उसे कोई देखे, चाहे न
, वह अपने कर्तव्य में मगन है।

कर्तव्य की कठोरता भी बड़ी विलक्षण है। साधारण दृष्टि में
उसका प्रदर्शन अनौचित्य की सीमा को पहुँच जाता है। परन्तु
कर्तव्य पर आरूढ़ है, वही जानता है कि उसे किन भावनाओं
प्रेरित होकर वैसा करना पड़ता है। अग्नि का धर्म है जलाना
कर्म में त्रुटि न करना ही उसका कर्तव्य है। फिर यदि गोद क
ालक भी भूल से उसके पास पहुँचता, और उसे लेने को हा
ाता है, तो अग्नि उसे तुरन्त जला देता है। इससे अधि
र्दयता और क्या होगी? परन्तु, प्रकृति के नियमों में इत
टलता न हो, तो उसका व्यापार ही बन्द हो जाय। तनिक ढी

ी आज्ञा दे देते, तथा लक्ष्मण उसे पालन करते हैं। महाराना प्रताप
े राजकुमार और राजकुमारी वन में वृक्षों की छाल के आटे की
ोटियाँ खा रहे हैं, उन्हें भी बिल्ली छीन ले जाती है, और वे पत्थर
न बैठे देखते हैं। राजा हरिश्चन्द्र का प्राणाधार पुत्र मर जाता है,
ानी शैव्या उसे मरघट में लाती है; उसके पास केवल एक ही
कफ़न है; उसका विलाप सुनकर पत्थर पसीजते और वृक्ष रो देते
हैं, परन्तु कम्बल और लकुट लिये राजा आते, और बिना कर
चुकाये उसकी मृतक-क्रिया भी नहीं होने देते हैं। अभी अभी कुछ
ही महीनों की बात है, अटलांटिक महासागर के बरमूदा द्वीप-
समूह में एक भारी तूफ़ान आया। जहाज़ डूबने लगा। रक्षा के
लिए नावें आ गईं, परन्तु संख्या में कम थीं। जहाज़ का कप्तान
और उसके सहायक ३५ कर्मचारी, तब तक नावों पर आकर प्राण
बचाना नहीं चाहते जब तक कि एक भी यात्री शेष है। फलतः सब
के सब अपना काम करते हुए सागर के अनन्त गर्भ में सदा को
सो जाते हैं। इस आत्म-बलिदान का कारण क्या है? केवल
कर्तव्य की प्रेरणा।

कर्तव्य में ऐसा क्या मीठा है, जो इन सब कठोर कर्मों को करा डालता है? हाँ, उस में कुछ ऐसी ही मिठास है, जिसके वर्णन में वाणी मौन है। कर्तव्य-पालन की एक लगन होती है, और उस

भ होता है। चार आने का मजदूर काम करके कैसी सुख की
ंद सोता है। प्रजा को सुखी करके राजा के मनोरञ्जन की सीमा
हीं रहती। रोगी को चंगा करके वैद्य वा डाक्टर का हृदय छलाँगें
रने लगता है। पानी में डूबते हुए को बचाकर तैरनेवाला अपने
धन्य मानता है। शिष्य को विद्या वितरण कर आचार्य को
नन्त आह्लाद होता है। प्रतिद्वन्द्वी को पछाड़कर पहलवान्
फुल्लित हो जाता है। इनका सुख यदि इन्हीं से पूछा जाय, तो वे
ी कह न सकेंगे, अनुभव ही कर सकते हैं।

जो अपने कर्तव्य-पालन में जितना कुशल है, जितना सचेत है,
सकी महिमा उतनी ही महान् है। उसकी कीर्ति भुवनव्यापिनी,
ौर उसका चरित्र सुर-वन्द्य होता है। उसके चरण-चिह्नों को देख
ौरों को दिशा सूझती है। "महाजनो येन गतः स पन्थः" अर्थात
जस मार्ग से बड़े जन गये हैं वही मार्ग है, यह मर्यादा ऐसे ही
ुरुष-पुङ्गवों द्वारा स्थापित होती है। वे ही जाति, समाज और
ाष्ट्र के अग्रगन्ता होते हैं। ऐसे ही कर्मवीर मानव-कुल के दीपक
ोते हैं। वे कर्तव्य-पालन ही से असम्भव को सम्भव कर दिखाते
और जीवन में विजय पाते हैं।

२३—शरीर-रक्षा

(२) धर्म का प्रथम साधन।

(३) स्वाभाविक और कृत्रिम जीवन; एक राजा और कथा
षि।

(४) जातीय प्रतिष्ठा; अर्जुन और उर्वशी; दधीचि।

(५) सरल जीवन और उच्च विचार।

(६) स्वास्थ्य के नियम।

(७) तन, मन, धन का सम्बन्ध।

र आत्मा का निवास है, उसका मन्दिर है। यही वह रथ
सपर बैठकर मनोदेव इन्द्रियों के घोड़े दौड़ाते, और आका
ताल की सैर किया करते हैं। यदि इसके पहिये ढीले हो जा
—उनकी कमानियों में दम न रहे—तो इतने दचके लगें f
री कमर रह जाय, और जीवन-यात्रा दूभर हो जाय। इस
-पुर्जे, कील-काँटे इतने पेचीदा हैं कि उनका सँभालना हँस
नहीं, सूरे-पूरों ही का काम है। कुशल कारीगर ही उन्हें ठी
क सकता है, और इसका नव-निर्माण (Overhauling)
अर्थ रखता है। जो इसकी धुरी का काँटा ठीक रखते, औ
वत रूप से इसकी देखभाल, साज-सँभाल करते रहते हैं, उन
लिए यह हलका और सुखावह सिद्ध होता है।

"शरीरमाद्यं खलु धर्म-साधनम्।" अर्थात् निश्चय ही शरी

और जब विचार स्वस्थ नहीं तो धर्म की साधना कहाँ? इसलिए, शरीर को स्वस्थ रखना हमारा परम कर्तव्य है, इसके बिना जीवन सुखमय हो ही नहीं सकता। बालक से लेकर बूढ़े तक, और राजा से लेकर संन्यासी तक सब को शरीर-रक्षा का ध्यान रखना पड़ता है। शरीर स्वस्थ न हो तो सांसारिक भोग व्यर्थ हो जाते हैं। अच्छे से अच्छे पदार्थ, वस्त्र, आभूषण इत्यादि रोगी शरीर के लिए बोझ के तुल्य हैं। उसे उनमें फीकापन ही दृष्टि आता है; वे उसके संताप का ही कारण होते हैं।

आत्मा परमात्मा का स्वरूप है। उसके इस मन्दिर को यदि हम स्वच्छ और शुद्ध न रखें, तो बड़ा पाप होगा। परन्तु, इस पाप को हममें से कितने पाप समझते हैं? अतिमात्रा में भोजन, विहार करना तो हमारे लिए साधारण-सी बात हो गई है, बरन् ऐसा न करें तो हम समझते हैं कि हमने शरीर का सुख ही क्या भोगा। प्रकृति ने हमारे खाद्य पदार्थों को जिस रूप में उत्पन्न किया है उसमें हमने इतने परिवर्तन कर डाले हैं, उनसे इतने व्यञ्जन बना डाले हैं कि जीभ उनकी ओर ऐसी दौड़ती है कि रोके नहीं रुकती। हमने एक स्थान पर पढ़ा था कि एक राजा के यहाँ कुशल वैद्य इसलिए रखे जाते थे कि वे सुस्वादु भोजन के पश्चात् उसे वमन (उलटी) करा दिया करें, जिससे कि वह फिर शीघ्र ही अन्य स्वादिष्ट पदार्थ

कण बीनकर सादा भोजन करते थे। आज उनका रचि
षिक शास्त्र संसार को चकित कर रहा है। सरल जीवन औ
म जीवन के ये दो स्पष्ट उदाहरण हैं। दूर क्यों जायँ, अपन
ही न देखें। प्रातःकाल से लेकर संध्या तक हममें से बहुत
मुँह बकरी की भाँति चलता ही रहता है। आँतों को आरा
जो हम जानते ही नहीं; । समझते हैं पेट खाली रहा, तो प्राण
कल जायँगे। यह शरीर के साथ अत्याचार नहीं, पाप नहीं, त
है ? सच तो यह है कि हम बहुधा खाने के लिए जीते है
ने के लिए नहीं खाते।

शरीर का सम्बन्ध केवल अपने ही तक होता, तो भी कुछ
त न थी। मुख की तेजस्विता, शरीर की गठन और अङ्गों व
रुता पर जाति तथा देश की प्रतिष्ठा भी अवलम्बित है
र हम किसी अँगरेज, फ्रेंच, जापानी, वा जर्मन जाति
च्चे, युवक वा युवती को देखते हैं, और अपने यहाँ के पी
ले चहरों, और झुके हुए कन्धों तथा अस्थि-पञ्जरों तुल
रते हैं, तो हृदय में हूक उठने लगती है। उस समय हम सोच
कि इस प्रकार की दरिद्र-मूर्तियों को लेकर भारतवर्ष किस
ामने मुँह उठा सकता है। एक समय था, जब इसी भारत व
र अर्जुन जब सुरलोक में गया, तब उसके तेजस्क बदन

भ्रन्य जातियों के मनुष्य युवा प्रतीत होते हैं, उसी में हम बुड्
र पड़ते हैं। बहुत से तो जान भी नहीं पाते कि यौवन क
था, और कब गया। यह सब शरीर की उपेक्षा का परिणा
ं तो क्या है? जिस आर्य-जाति के ऋषि दधीचि की हड्डिय
र सुरपति इन्द्र अपना वज्र बनाये, उसकी यह दशा देख
जा ऊपर को आता है।

'सरल जीवन और उच्च विचार' हमारे मनस्वी पूर्वजों का मू
. था, और उसकी सिद्धि स्वस्थ शरीर पर निर्भर है। स्वास्थ्य
र के नियम जानने के लिए यों तो विज्ञान की एक शाखा आर
अलग ही है, परन्तु कुछ मोटी मोटी बातें हैं, जिनपर ध्या
ने से स्वास्थ्य सहज नहीं बिगड़ता। शरीर की रचना व
वश्यक ज्ञान प्रत्येक नर नारी को होना चाहिए। फिर अप
ने शरीर की विशेष बातों पर उसे स्वयं ध्यान रखना चाहिए
ना होने पर जीवन के मुख्य आधार वायु, जल और भोज
र का उचित रूप से काम में लाना है। इनकी शुद्धता परमावश्य
शरीर की शक्ति चलने, फिरने, काम करने से क्षीण हो
ती है। उसकी पूर्ति के लिए नींद स्वाभाविक साधन है। गह
द आने से हमारा रक्त फिर से वेगपूर्वक चलने लगता, और ह
स्फूर्ति आ जाती है। इसके अतिरिक्त शरीर के रग-पुट्ठों को

क व्यक्ति के लिए अलग अलग होती है। बलाबल का विचार
के व्यायाम करने से ही लाभ होता है। गागर में सागर भरने
समान स्वास्थ्य के कुछ नियम नीचे लिखे जाते हैं :—

(१) शुद्ध और स्वच्छ वायु के सेवन पर सब से पहले ध्यान
ा जाय। प्रातःकाल शुद्ध और खुली हवा में भ्रमण करन
र्वोत्तम है। इससे हलका और अच्छा व्यायाम भी हो जाता
 के समय मुँह ढककर न सोया जाय। मकान में काफ़ी
ाजे और खिड़कियाँ हों, और वे खुले रहें। साँस सदैव नाक
लिया जाय। गहरा साँस लिया जाय, और हवा को कम छोड़ा
य।

(२) स्वच्छ और सद पानी पिया जाय। यदि जल स्वच्छ
तो औटाकर वा फिटकरी डालकर स्वच्छ कर लिया जाय
न को भी पूर्ण महत्व दिया जाय। ठंडा वा ताजा जल ही स्नान
लिए अधिक उपयोगी है। रोगियों को गरम जल काम में लान
 हितकर है। स्नान के पश्चात् शरीर को स्वच्छ और मोटे कपड़े
खूब रगड़कर पोंछ लिया जाय।

(३) भोजन खूब भूख लगने पर किया जाय, परन्तु भूखा

किया जाय। बदलते हुए अन्न-शाक आदि व्यवहार में लाये जायँ। भोजन के साथ स्निग्ध पदार्थ, जैसे घी आदि अवश्य खाये जायँ। दूध और फल स्वाभाविक तथा सात्विक भोजन है। भोजन नियत समय पर किया जाय, चबा-चबाकर किया जाय, और भोजन के पश्चात् दाँतों को साफ़ कर लिया जाय।

(४) वस्त्र सादा किन्तु साफ़ सुथरे हों। तंग वा कसे हुए न हों। शरीर रोगी न हो तो व्यर्थ बहुत से वस्त्रों की आवश्यकता नहीं।

(५) व्यायाम नित्य और नियमित रूप से किया जाय। उतना ही व्यायाम किया जाय जिससे थकावट न जान पड़े। प्रातःकाल का समय इसके लिए सर्वोत्तम है। रात का समय ठीक नहीं। व्यायाम के पूर्व स्नान किया जाय अथवा व्यायाम के पश्चात् जब कि रक्त का सञ्चार साधारण रीति से होने लगे। भोजन के पश्चात् व्यायाम कदापि न किया जाय, न व्यायाम के पश्चात् तुरन्त भोजन किया जाय।

(६) गहरी और शान्त निद्रा स्वास्थ्य की सहचरी है। ६ से ८ घंटे तक सोना आवश्यक है। दस ग्यारह वर्ष तक के बच्चों को कम से कम १० घंटे सोने दिया जाय।

(७) नशीले द्रव्यों से जहाँ तक हो बिल्कुल बचा जाय।

बेदान्त की लटक में शरीर-सेवा को मूर्खता समझते हैं, वे भूलते हैं। तन, मन और धन का साथ है। जिसके पास पुष्ट तन नहीं, उसके पास विकसित मन वा मस्तिष्क नहीं। जिसके पास मन नहीं उसके पास धन वा वैभव नहीं। यह बात शङ्कातीत है। इसलिए, शरीर-संगठन की ओर प्रथम दृष्टि होनी चाहिए। संक्षेप में इसके तीन साधन हैं,—संयम, नियम और व्यायाम।

२४—१९२६ की चुनाव-लीला

पूर्व विचार :—

(१) सदियों की दासता; वोट का अधिकार।
(२) वोट क्या है ?
(३) वोट के अधिकारी।
(४) कौंसिलों में देश-सेवा।
(५) राजनैतिक दल।
(६) चुनाव-लीला के कुछ अभिनय।
(७) कार्यकर्ताओं की करतूतें।
(८) मत-भेद।

इस उठती हुई भावना को देखकर हमारी चतुर सरकार ने भं
अधिकार दिये हैं, जिनके द्वारा हम धीरे धीरे स्वराज्य-पथ कं
[ले जाये जा रहे हैं। हमारे चुनेहुए प्रतिनिधि कौंसिलों]
।, और वहाँ हमारी भलाई पर विचार करते हैं। चुनाव के इस
धेकार को वोट कहते हैं।

वोट क्या है ? वोट ही वह पवित्र अधिकार है जिसका 'क
' जुड़ने से स्वराज्य रूपी 'मन' बनेगा। हमारा यह अधिका
म सिद्ध है, ईश्वर-दत्त है। हमारे देश का भाग्य इसी प
लम्बित है, और हमारी योग्यता का सार यही है। गवर्नमें
है ? कोई भूत नहीं, प्रेत नहीं, देव नहीं, राक्षस नहीं, और व
हौआ कदापि नहीं। हमारी राय के अनुसार जो नियम व
नून बनें उन्हीं को हम सब मानें यही गवर्नमेंट है, और हमा
ा ही वोट है। इसलिए वोट ही गवर्नमेंट का माँ-बाप है। जि
ार बेटे का सपूत वा कपूत बनाना माँ-बाप के हाथ में है, उस
ार गवर्नमेंट का अच्छा वा बुरा बनाना वोट की करामात है
ट गवर्नमेंट रूपी बरगद का छोटा-सा बीज है। परन्तु, यह ऐ
थयार है कि ठीक बैठे तो विपक्षी का धुआँधार उड़ा दे, और च
ाय तो अपना ही शिर धड़ से छुड़ा दे। इसलिए, बहुत सम
झकर और कुशलता के साथ इसका प्रयोग करना उचित है।

रखती हैं, पुलिस बड़ी कठोर है, हाकिम बड़े होशियार हैं। उ
सन के संहारक स्वरूप का अनुभव-जन्य बोध है, उसके सुधार
रूप का बहुत कम वा नहीं के तुल्य। अन्न और नमक उन
स्व हैं, परमेश्वर हैं। उन्हें अन्य झंझटों से घृणा है। सरक
ई हो उन्हें चिन्ता नहीं, वे अलखराम अपनी गुदड़ी में मस्त हैं
धीनता वा दासता का वे अनुभव ही नहीं करते। अब रहे
पराधीनता के कष्टों से अकुला उठे हैं, जो देश को स्वतंत्र देख
लिए लालायित हैं, जो देश पर सर्वस्व निछावर कर रहे हैं।
कौंसिलों में प्रवेश करने के लिए आगे बढ़ते, और चुनाव-वीत
नाटक खेलते हैं।

सरकार के साथ काम करके यदि देश की कुछ सेवा हो सक
तो उसका सबसे अच्छा अवसर कौंसिलों में ही मिलता है
येक देश का उद्धार वहाँ के पुरुष-रत्नों के द्वारा ही हुआ है। उन
मस्तिष्क की उपज पर देश का भाग्य-निर्माण अवलम्बित है
लिए योग्य से योग्य, और सच्चे देश-सेवियों के लिए ही वो
। और उन्हें चुनना चाहिए। परन्तु यश की लालसा बड़ी प्रब
ती है। स्वार्थ का त्याग बड़ा कठिन है। प्रभुत्व का प्रेम बुद्धि पु
दा डाल देता है। ऐसे ही कारणों से हमारी मनोवृत्ति में दास
ऐसा विकार उत्पन्न कर दिया है कि हम एक स्वर से कुछ क

१९२६ की चुनाव-लीला में बड़े बड़े विचित्र दृश्य देखे। देश मे
 प्रधान दल थे। (१) असहयोगी दल (२) कांग्रेस दल व
ाज्य-दल (३) स्वतंत्र-कांग्रेस दल (४) नरम दल। पहला दल
 था, वह सरकार से मिलने में देश की भलाई ही नहीं देखता
या दल सरकार से इतना मिलना चाहता है कि जनता उससे
ुष्ट नहीं। दूसरा दल सरकार को दबाकर स्वराज्य छीनना चाहत
और तीसरा भी चाहता यही है, पर सरकारी पदों को स्वीका
के। इन्हीं दूसरे, तीसरे दलों का संघर्ष इस बार के चुनाव म
ा। उसमें हमारी मनोवृत्ति का पूरा पता चल गया।

बड़ी बड़ी अद्भुत लीलाएँ हुईं। कहीं गोपियों के मनको हरने
ी बाँसुरी बजी; कहीं मोर-मुकुट के मोती, लाल चमके। कह
दी की लाज, पत रखी गई; कहीं बाल-मण्डलियाँ केलि करत
। कहीं केशी कंस, बकासुर जय कर लिये गये, कहीं जरासं
 चीरने के लिए सैन चले। निस्सन्देह नये नये पैंतरे बदले गये
 चोट कहाँ पड़ी ? अपने ही भाइयों के शिर पर, अपनी
ा की छाती पर। बड़े बड़े पूज्य चरणों से, वन्दनीय बाहु
 महामान्य मुखों से ऐसा गदला पानी उलीचा गया कि लज
 नंगे नाच को देखकर अपने अङ्ग सिकोड़ कच्छप बन गई
ली श्रद्धा भटक-भटककर बावली होगई। पतन अपने प
ा-फैलाकर उछलना किया।

टा। हिन्दू-हितैषियों ने हिन्दुत्व की आड़ में कीर्ति कमाई। मुसलमानों ने मुसलिम हितों की रक्षा का राग अलापा। चन्दे की कमी से लड़खड़ाती हुई संस्थाओं ने दान का नाम निकाला। प्यासे ग़रीबों ने कुएँ खुदवाये। पदधारियों ने अपनी पदवी की लज्जा रखी। सम्बन्धियों ने सम्बन्ध निभाया। किसानों ने जमींदारों के प्रति अपनी भक्ति दिखाई। ज़मींदारों ने अपनी शान का नमूना दिखा दिया। जिनकी जीभ में बल था, उन्होंने जीविका तक कमाई। वे कभी इस उम्मेदवार के, और कभी उस उम्मेदवार के गीत गाकर अपनी जेब गरम करते रहे। यह सब हुआ उस पवित्र नाम पर, उस पुनीत वेदी पर, जिसका नाम राष्ट्रीयता है। देवी स्वतंत्रता की पूजा इस विध की गई। भोले वोटर जब वोट देने जाते थे, तब तो जिस छल से, जिस प्रपंच से, जिस नीति से काम लिया जाता था, उसे देखकर हृदय बैठा जाता था। उम्मेदवारों के नाम तक का उच्चारण बेचारे बहुत से न कर सकते थे। वोट दे चुकने पर उनका बोझ उतर जाता था, उन्हें एजेंट रूपी मच्छरों से मुक्ति मिल जाती थी। विशाल भारत, और उसकी इस अन्धी सन्तान की कल्पना करके शरीर में रोमाञ्च हो उठता है। राम-राज्य की यह प्रजा आज स्वराज्य के लिए किस अवस्था को पहुँच गई है!

मत-भेद बुरी बात नहीं। वह उन्नति का लक्षण है। परन्तु,

ध्येय। मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई मातृ-भूमि के साथ खेल करना उचित नहीं। ऐसी दशा में उसके योग्यतम पुत्र को ही उसकी सेवा-शुश्रूषा करने दो। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, अछूत, धनी, निर्धन सभी उसके पुत्र हैं। इन संकीर्ण भावों को छोड़कर उसके सेवक चुनो। वोट की पवित्रता की रक्षा करो। चुनाव के स्वार्थ-पूर्ण नाटक का अन्त कर दो। ऐसी लीलाएँ खेलो, जिनका प्रभाव राष्ट्र की एकता, उसके गौरव तथा प्रताप के उत्कर्ष का कारण हो। तभी स्वाधीन भारत के दर्शन होंगे, और तुम अपना राज आप कर सकोगे।

२५—चरित्र-बल

विचार सूची :—

(१) गौतम; प्रह्लाद; पाण्डव।

(२) चरित्र मनुष्य की निज की सम्पत्ति है।

(३) चरित्र की छाया।

(४) चरित्र-रक्षा; भीष्म; वीर वैरागी; कर्ण।

(५) चरित्र-शीलता।

गौतम ने राज-पाट छोड़ दिया। आधी रात के समय पुत्र, कलत्र

ण में सहस्रों ही नहीं, करोड़ों, अर्बों को निर्वाण-पद मिल
र मिल रहा है। प्रह्लाद पर विपत्तियों के वज्र गिराये गये
बालक को पहाड़ों की चोटियों से पटका गया; कुम्हार के अ
फूँका गया; होलिका की गोद में जलाया गया, किन्तु उसक
ल भी बाँका न हुआ। वैरागी बुद्ध, और बालक प्रह्लाद
स कौन-सा बल था, जिससे वे जगद्वन्द्य हुए; अपनी अकिञ्च
में भी सम्राटों से बढ़ गये? किसके बल से हमारे ऋ
नयों ने वन के कन्द, मूल, फल खाकर शास्त्रों की रचना
? किस के बल से वन वन भटकते हुए पाण्डव कौरवों
ठित-सेना से लोहा लेने में समर्थ हुए थे? यह सब चरित्र-ब
ही महिमा थी।

चरित्र मनुष्य की निज की सम्पत्ति है। उसके सामने ऋद्धि
र सिद्धियाँ तक तुच्छ हैं। वह ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से
है। संसार के सब सद्गुण एक ओर, और चरित्र दूस
र रखकर तौलिए, चरित्र का ही पलड़ा भारी रहेगा। चरि
गुण की भूमि है। जिस प्रकार पानी का कोई रंग नहीं होत
जैसे रंग में मिल जाता, वैसाही उसका भी रंग हो जाता
ी प्रकार गुण भी जैसे चरित्र में मिलता है, वैसा ही रूप धार
ता है। यदि हमारा धन चला गया तो कुछ नहीं गया; य

ास्त्रों का अध्ययन किया; धर्म के तत्व को पहिचाना, परन्तु उस
ः अनुकूल आचरण न किया तो क्या किया? किसी गधे प
न्थों का बोझ लाद दिया जाय, तो क्या वह विद्वान् हो जायगा
रित्रवान् का अल्प ज्ञान भी चरित्रहीन के अगाध पाण्डित्य रं
ढ़कर है।

हम विद्याध्ययन में अनेक कष्ट उठाते, और साधुओं कं
गति तथा सेवा में लगे रहते हैं। शारीरिक तप तथा मानसिव
ान में मग्न, और सत्य की खोज वा विज्ञान के विचार ं
रत रहते हैं। साहित्यिक ग्रन्थों का मन्थन तथा पुराणों क
रायण करते हैं। इन सबका ध्येय चरित्र का निर्माण ही होत
। चरित्र की साधुता वा असाधुता ही हमारे जीवन की छाय
। उसी को देख-देखकर लोग हमें पहिचानते, और हमारी पद
तिष्ठा की श्रेणी नियत करते हैं। हम कुछ करें वा न करें, हमारा
रित्र मानव-समाज पर निरन्तर अपनी छाया डालता रहता है।
ꣳ दीप्तिमान तपस्वी के तेज को देखकर देखनेवाले के मन में
स प्रकार प्रकाश की भावना का उदय होता है, उसी प्रकार एक
ापी के मद्यपान द्वारा विकृत वदन को देखकर अन्धकार की
ा उसके सामने खिंचे बिना नहीं रहती। बड़े बड़े विद्यालयों
ा गुरुकुलों की शिक्षा का ध्येय वहाँ की डिग्रियाँ (बी ए.

विपत्तियों के पहाड़ टूट पड़े हैं, धन जन, सर्वस्व छीना गय
नंगी तलवार शिर पर नाचती रही है; हाथियों के पाँवों तले
ला गया है; तो भी चरित्रवान् अपने चरित्र पर अटल रहे हैं
त्र को दबानेवाली शक्ति आज तक न उत्पन्न हुई और न हो
अजेय है। चरित्र भगवान् का प्यारा और सङ्कट का सहा
भीष्म के पास एक चरित्र है, वे उसके बल पर भगवान् कृष्ण
चुनौती देते हैं। उनके सामने भगवान् अपना व्रत तोड़क
का चक्र धारण करते, और भीष्म हँस देते हैं। वीर वैराग
क्ख के पुत्र का कलेजा उसकी आँखों के सामने निकाला जात
र उसकी छाती मे मारा जाता है। पर उसकी आँखें चरि
से ध्रुव हैं, वह अपने धर्म पर अटल है। कर्ण रण-क्षेत्र
यल पड़ा है, उसके कवच और कुण्डल अजेय हैं, उन्हीं से व
मर है। विप्र-वेश में कृष्ण उसके पास जाते हैं, और कवच
डल की भिक्षा माँगते हैं। कर्ण छद्मवेशधारी ब्राह्मण को प
न लेता है, परन्तु कवच-कुण्डल उतारकर चरित्र की लज्ज
ता है। धन्य है इन चरित्रशीलों की जननी को, धन्य है इन
त्री को !

मनुष्य जन्म पाकर यदि हम कुछ भी प्राप्त कर सकते हैं,
से पहले हमें चरित्र बल प्राप्त करना चाहिए। सांसारि

वकील से अपने खेत पर परिश्रम करके रूखी सूखी खानेवाला एवं
चरित्रवान् किसान कहीं अच्छा है। चरित्र की पवित्रता के लिए
किसी विशेष वायुमण्डल की आवश्यकता नहीं। उसका क्षेत्र
किसानों, व्यापारियों, वकीलों, मजदूरों, गृहस्थों, संन्यासियों, बच्चों,
बुड्ढों सभी के समाज में है। अपने अपने धर्म को पहिचानने,
और निश्छल भावना से काम करने से शील की रक्षा सर्वत्र हो
सकती है। रहीम कवि की इन पंक्तियों में सच्चरित्र वा शील-युक्त
जीवन का सार छिपा है :—

"रहिमन रहिबो वा भलो, जौ लौं शील समूच।
शील-ढील जब देखिये, तुरत कीजिये कूच॥"

२६—काशी की शोभा

पतित-पावनी पुण्य-तोया श्रीगंगाजी के तट पर विश्वनाथपुरी
काशी की शोभा अनुपम ही है। अविनाशी शङ्कर के त्रिशूल पर
शोभित यह वही काशी है जो चिर-काल से हिन्दू-धर्म, आर्य-
संस्कार और संस्कृत भाषा की संरक्षिका रही है। भारत के कोने
कोने से लाखों यात्री प्रति वर्ष यहाँ आते, और गंगा-जल में स्नान
कर चारों फल पाते हैं। यहाँ के विशाल प्रासाद

मय समय पर सुशोभित होती रही है। यहीं डोम के घर मे
त्य की हरिश्चन्द्री छटा छिटकी थी। यहीं से तुलसी ने अपनी
ोमल-कान्त-पदावली, और भारतेन्दु ने ललित नाटकावली मे
ष्ट्र-भाषा हिन्दी की नूतन धारा बहाई थी। यहीं महामना पण्डित
दनमोहन मालवीयजी ने विश्व-विद्यालय की स्थापना कर हिन्दू
ाति का मस्तक ऊँचा किया है।

भगवती भागीरथी मुड़कर मानों यहाँ विश्वनाथ के दर्शनों को
ढ़ी चली आती हैं। उसी मोड़ पर कोई सौ फ़ीट ऊँचा पहाड़ी
ट है, जिस पर इस पुण्य-दर्शन पुरी के गगन-चुम्बी प्रासाद
र्गोपम देव-मन्दिर और मनोरम घाट तीन मील तक भुवनमोहिनी
टा उपस्थित करते हैं। नौकारूढ़ होकर प्रातःकाल सामने से
तकी छटा का अवलोकन कीजिए। अपूर्व दृश्य दृष्टि आता है।
रसरी की सलिल-धारा से उठती हुई सोपान-माला मानों स्वर्ग
ी नसेनी-सी बन जाती है। जल में निकले हुए चबूतरों पर
ासन बाँधे ध्यानावस्थित भक्तों का मुखमण्डल पवित्र भावों की
रणा करता है। "गंगे, गंगे" कहते हुए नगे यात्रियों का सुन्दर
ान बड़ा मनोहारी होता है। तृण-निर्मित छत्रों के मण्डप में
राजमान त्रिपुण्डधारी पुरोहित वा माला-मण्डित साधु जहाँ तहाँ
राली ही छवि देते हैं। स्थल स्थल पर छोटे छोटे मठों में विराज

ती मूर्ति-सी लगती हैं। मित्र-मण्डली के साथ विनोद-विहार
क, भ्रमण की भावना से आये हुए परिव्राजक, दूध-बताशे
-फूल, कण्ठी-माला और खिलौने बेचते हुए फेरीदार इधर उध
ार करते हैं। नादियों का निर्द्वन्द्व विचरण और कमण्डलु
ीन-धारी साधुओं का विशाल परिवार यहीं देखने को मिलत
नीले नीले गगन-मण्डल के नीचे चन्द्रिका-धवल भवन, चित्र
चित्र मन्दिर, उठते हुए मण्डप, तथा कलश कगूरे और उनप
राती हुई तोरण-पताकाएँ आकाश से बातें करती हैं। इन स
बहुरङ्गी दृश्य तट की शोभा को ऐसी रमणीय बना देता है कि
साक्षात् शङ्कर की बाघम्बरी शोभा धारण कर लेती है, औ
का जल में पड़ता हुआ प्रतिबिम्ब तो ऐसा जान पड़ता है मान
ा के गुण गा-गाकर काशी ही स्वयं जल-क्रीड़ा कर रही हो।

काशी सदा से विद्या का केन्द्र रही है। आज वहाँ हिन्दू-विश्व
द्यालय या बनारस-हिन्दू-यूनीवरसिटी के रूप में वाग्देवी
ना भवन निर्माण कर उसे अपना चिरनिवास घोषित क
या है। प्रधान नगरी से कुछ ऊपर गंगा-तट पर स्थित तीन मी
म्बा और उतना ही चौड़ा यह विशाल विद्यापीठ भारत में
ीं, विश्व भर में अपनी समता नहीं रखता। इस पुण्य-स्थली
ेश करते ही हिन्दुत्व का प्रभाव और धर्म की निर्मल भाव

उड़ती हुई पताकाएँ हैं। वहाँ के वायु-मण्डल में ही कुछ ऐसी सौरभ है, जो शरीर को छूते ही विशद विचार उत्पन्न कर देती है। छात्रालयों, विद्यालयों तथा आचार्यों के आश्रमों के पट, मण्डप, कलश, कगूरे भी मौन-भाषा में कुछ ऐसा सङ्केत करते हैं कि आर्य-जीवन की सरलता और उसके विचारोत्कर्ष का दृश्य एक साथ ही सामने आ जाता है। छात्रों वा आचार्यों की कोई विशेष भेष-भूषा नहीं, तो भी उनकी मञ्जुल मुद्राओं पर हिन्दू जीवन की छाप-सी लगी जान पड़ती है।

आर्य जाति के अतीत गौरव के चिह्न, और पूर्वीयता की प्रतिमूर्ति यहाँ के छात्रालयों तथा विद्यालयों में प्राचीनता और आधुनिकता का गंगा-जमुनी मधुर सम्मिलन पद पद पर प्रतिलक्षित होता है। "विद्या धर्मेण शोभते।" (विद्या धर्म से ही शोभित होती है) का भाव यहाँ साकार विद्यमान है। साहित्य, विज्ञान, ललित कला, प्राणि-शास्त्र, बनस्पति-शास्त्र, भूगर्भ-विज्ञान, कृषि विज्ञान, आयुर्वेद, राजनीति, आदि के लिए पृथक् पृथक् विद्यालयों की योजना की गई है। साहित्य-विद्यालय का प्रधान भवन यद्यपि बहुत विस्तृत नहीं तथापि बड़ा ही भव्य है। वहाँ प्राय नित्य ही देश-विदेश के विद्वानों के गम्भीर तथा पाण्डित्य-पूर्ण भाषण सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता है। शिल्प-विद्यालय के द्वार पर

ाकर आशा की एक ज्योति भविष्य के उज्ज्वल गर्भ में चमकती
ाई देती है। यहाँ के छात्र यूनीवरसिटी का आवश्यक सामान
यं ही बनाते, और बाहर का भी काम करते हुए अध्ययन करते
। रात को बिजली का प्रकाश भी यहीं से होता है। यों तो कई
 विशाल छात्रालय हैं और बन रहे हैं, किन्तु महिला-छात्रालय
ाँ ही विशेषता है। स्त्रियों की शिक्षा को भी उतना ही महत्व
या जा रहा है जितना कि पुरुषों की शिक्षा को। इन्हें देख-देख
 तक्षशिला और नालिन्द के मठ ध्यान में घूम जाते हैं। अभी
नेक विद्यालय तथा छात्रालय बनने को शेष हैं। जिस समय वे
 बन जायँगे, और जैसा कि निश्चित है, विश्व-विद्यालय के
ारों ओर गंगाजी से निकालकर एक नहर बहाई जायगी, उस
मय इस तपोवन की शोभा इन्द्रपुरी से भी बढ़ जायगी
समें सन्देह नहीं।

पूज्यपाद महामना मालवीयजी जिस भवन में निवास करते
ह छोटा-सा परन्तु बड़ा चित्ताकर्षक है; वह भुला देने की वस
हीं। उनकी प्रेम और वात्सल्य-भरी बातें वहीं सुनने को मिलत
। वे एकादशी के दिन अपने श्रीमुख से जब गीता, उपनिषद
राण आदि की कथा सुनाने बैठते हैं तब उनके मुख से
। उस ऋषि-परिवार को देख-देखकर सतयुग की

त गात में उनके भव्य भावों की मूर्ति वहाँ प्रतिलक्षित होती है
व तो यह है कि काशी-धाम कहीं हो, पर उसका वर्तमान निवा
श्व-विद्यालय ही है, जहाँ पूज्यचरण मालवीयजी ने भारत
स्तिष्क लाकर रख दिया है। वहीं शङ्कर के डमरू-नाद से काश
गगन गुञ्जायमान होता है।

२७—किसान

ट्टी से रत्न उत्पन्न करना किसान का ही काम है। उसकी पसी
कमाई में सब का साझा है। वह एक रूप से मनुष्य मात्र
न्नदाता, और पशु-पक्षियों तक का पालनकर्त्ता है। दिन भ
श्रम करके जब वह सोने को जाता है, तब यह भी नहीं सोच
मैंने संसार का क्या उपकार किया। उसके स्वार्थ में भी परा
उसकी सेवा बड़ी निष्काम है। कहते हैं कि जैसा धान्य होता
सी ही बुद्धि बनती है, अर्थात् जिस प्रकार की कमाई का पैस
ता है, आचार-बुद्धि पर उसका वैसा ही प्रभाव पड़ता है। ए
चारी वा चोर के धान्य से कुमति, और महनती मजदूर
न्य से सुमति उत्पन्न होती है। इस दृष्टि से, किसान का धान्
उत्तम, और सुबुद्धि-जनक है। उसके जीवन में साधु भाव ह
ान है।

न्धरा पर हरे हरे पौधे उगाना कैसे आनन्दमय कृत्य हैं। फल
ों से युक्त खेतों में अपने परिश्रम को फलता फूलता देख उसे उतना
आनन्द मिलता है जितना कि पुत्र-जन्म से पिता को। एक
र उसके बाल बच्चे बैठे हैं, दूसरी ओर खेती लहलहा रही है
वे धरती माता, और ऊपर किसी वृक्ष की छाया वा केवल अम्बर
उसी में मग्न हैं, और काम कर रहे हैं। कितना संतोषी और
त्र जीवन है। न शीत का भय है, न ताप की चिन्ता; न वर्षा
विचलित होते हैं, न वायु-वेग से व्याकुल। सभी ऋतुएँ उनके
मने से हँसती खेलती निकल जाती हैं, और वे उनका आनन्द
ते हैं। पके हुए अन्न का दाना दाना समेटते समय का उनका
श्रम बड़ा ही विलक्षण होता है। उस समय उन्हें अपने तन-
न की भी सुध नहीं रहती, उनके कर्त्तव्य की पराकाष्ठा हो
ती है।

भारतीय किसानों की दशा देखकर करुणा उत्पन्न होती है
ाँ की २५ करोड़ प्रजा के जीवन का आधार खेती ही है, वरन
कहना चाहिए कि इस देश के किसानों की जागृति तथा सुख
वृद्धि पर ही भारतवर्ष का उत्थान निर्भर है। वही किसान-जाति
ाँ महाकष्ट भोग रही है। अधिकांश किसानों के पास इतना भ
य नहीं कि वे समय पर खेतों में बीज डाल सकें, अच्छे बै

ठठरी बना देते हैं। न उनको अच्छा अन्न खाने को मिलता है, लागत को दाम शेष रहता है। यदि दुर्भिक्ष पड़ जाये, तो उनके प्राणों ही पर आ बनती है। दिन दिन उनके बल का ह्रास हो रहा है। दूध घी की तो बात ही क्या, बेचारे बहुतेरे तो छाछ को भी तरसते हैं। छोटे छोटे रोगों को भी सहन करने का बल उनमें नहीं रह गया, फिर भी मिथ्याभिमान पीछा नहीं छोड़ता। ऋण ले-लेकर विवाह आदि में अपव्यय करते हैं, और उसके दुष्परिणाम भोगते हैं। "बुभुक्षितः किं न करोति पापं" अर्थात् भूखा क्या पाप नहीं कर डालता? इस उक्ति के अनुसार उनका आचारिक पतन भी आरम्भ हो गया है। अपने अनन्त समय को वे आलस्य में बिता देते हैं।

जापान के किसानों की ओर देखिए। वहाँ भूमि की इतनी कमी है कि कहीं कहीं तो एक एक परिवार के भाग में एक खेत आता है। परन्तु, उसी में वे सब कुछ प्राप्त करते हैं। किसी जापानी के पास एक खेत भी है, तो उसी के कोने में एक क्यार छोटे से उपवन की भी होगी। बचे हुए समय में उनके बाल बच्चे और वे स्वयं रेशम आदि के वस्त्र बुनकर वा और कोई घरेलू धन्धा करके द्रव्य कमाते हैं। हमारे यहाँ भी सूत कातना ग्राम के बड़े बड़े घरानों का धन्धा था, परन्तु हम अब उसे छोड़ बैठे हैं। हम ... बन बैठे हैं, और हमारी आँखें ...

देश है। वहाँ का किसान मोटर में बैठकर अपने खेतों की सैर करता, और यहाँ के बड़े बड़े जमींदारों को मोल ले सकता है। किन्तु, काम के समय हम उसे घुटन्ना पहने, और कुदाल हाथ में लिये उसके नौकरों के साथ खेत मे पाते हैं। वह अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरों का मुँह नहीं ताकता, वरन् अपना भाग्य अपने ही हाथों बनाता है।

हमारे किसान भाई भी कोरी प्रतिष्ठा को छोड़कर यदि अपने समय को काम में लावें, अपने काम में अपने को स्वतंत्र कर लें, तो कोई कारण नहीं कि उनके दुख दूर न हो जायँ। कोई आसमान से उनके कष्ट छुड़ाने नहीं आवेगा, अपना भाग्य उन्हें आप बनाना होगा। इसमें सन्देह नहीं कि देश के नेताओं तथा सरकार का ध्यान इस ओर प्रतिदिन बढ़ रहा है, तो भी अपने दोष तो आप ही मिटाने होंगे। काम तो हमें ही करना होगा। इस रत्नगर्भा भारत-भूमि में इतनी उर्वरा शक्ति है कि उससे केवल यह देश ही धन-धान्य पूर्ण नहीं हो सकता, वरन् अपनी उपज बाहर को भेज-भेजकर विश्व का भरण पोषण कर सकता है। यहाँ का व्यापार, यहाँ का उद्यम, यहाँ का शिल्प सब यहाँ की खेती पर ही निर्भर है। यदि हमारी शिक्षा खेती की उन्नति की ओर ही झुक जाय, तो सारे युवक पढ़ लिखकर नौकरियों के लिए मारे मारे न फिरें। इतनी भूमि बिना जुती ऊसर पड़ी रहती है, और [illegible]

पना भी हम लोग नहीं करते। जो सुख वहाँ के किसानों को है
ाँ के अमीरों और रईसो को नहीं, इसमे तनिक भी अत्युि
ां है। वहाँ के ग्रामों के झोंपड़ों मे लक्ष्मी निवास करती है
ाँ के किसानो की सुख-श्री महीपालों की स्पर्द्धा का कारण होर
यदि हम भी वैसा ही परिश्रम करें, वैसी ही तत्परता से का
तो हमारा स्वराज्य हमारे हाथ है। विश्वास रखिए, परिश्र
व फल देता है।

२८—वर्षा-विहार

ी की तपन से तपी हुई पृथ्वी के ओठों पर वर्षा की बूँदें पड़
उसका मुख हरा-भरा हो गया। उसके झुलसे हुए गात्र प
ावली-सी खड़ी हो गई। वृक्षों और वेलों पर बहार आ गई
ां के भीतर वा खस की टट्टियों से बाहर निकलकर विहार कर
दिन भी आ गये। चारों ओर जंगल में मंगल होने लगा
ति ने अपनी धानी साड़ी पहन ली, और उसके दूत बाद
यतम के पास संदेश ले-लेकर दौड़ने लगे। कोयल की 'कु
' और पपीहा की 'पी पी' ध्वनि हृदयों में चुभने लगी। ज
ली लपट से आँखों में तिलूले उठते थे, वहाँ जल ही जल
ा, और उनपर विहार करते हुए सारस तथा चक्रवाक आँ

रहे हैं, मानों अपने पंखों के चँदोवे दिखा-दिखाकर इन्द्र से कह रहे हों कि लो हमारी ये आँखें तुम्हारे सहस्र नेत्रों से किसी प्रकार कम नहीं। बूँदों की टप टप पानी पर मोती-से उछाल रही है। उस समय पानी में क्रीड़ा करती हुई गाय, भैंसों और ग्वाल-बालों की डुबकियों से बूँदों की होड़-सी हो चली है। खेतों के पौधों और वृक्षों की डालियों पर हरियाली ही हरियाली बरस रही है। कहीं कहीं क्यारियों में बीर-बहूटियों के बहाने वर्षा ने अपनी रत्न-राशि से कुछ लाल पृथ्वी पर बखेर दिये हैं। पोखरों में मेंढक टर्र टर्र करते हुए अपना पेट ही फाड़ डालते हैं। वृक्षों पर मज्जीरें और झींगुर झङ्कार रहे हैं। बगुले पंख फैला-फैलाकर चाँदनी-सी तान रहे हैं, और उड़ते हुए सारसों की असली हवाई जहाज़ों की उपमा बन रही है।

नदियाँ अठखेलियाँ करती हुई इतरा रही हैं। ऐसी भँवराती हुई चलती हैं कि अपने आप ऐंठी जाती हैं। पेड़ों के पाँव उखाड़ती और किनारों को काटती हुई वे अपनी प्रगल्भता का परिचय दे रही हैं। झरनों और प्रपातों का घड़-घड़-नाद घुमड़ते हुए बादलों को जवाब-सा देता है। मेघों की तड़कन के साथ उनका भनभनाते हुए उतरना, और पहाड़ों की चोटियों की तड़कन के साथ उनका थरथराते हुए फिसलना ऐसा जान पड़ता है मानों पहलवान अखाड़े में पैंतरे बदल रहे हों। तालाबों में कमल फुलित-वदन खड़े हैं। उन पर पानी की बूँदें ...

बागों में विचित्र ही बहार है। वर्षा का रस रसालों के रूप में टप टप गिरता हुआ टपका बन जाता है, और भद् भद् गिरती हुई जामुनें मानों भादों के नामकरण-संस्कार की सूचना देती हैं। इतना ही नहीं, और आगे बढ़कर जम्बू-द्वीप का नाम भी वे अपने ही जन्म के कारण बताती हैं। भारत की विचित्र मेवा आम के बहाने वर्षा अपना सर्वस्व बागों को देकर वहाँ विहार करती जान पड़ती है। और, 'बाबा जी के बाग में दुशाला ओढ़े खड़ी हुई' मोतियों से जड़ी ककड़ी की तो बात ही निराली है। किसानों की वह लाड़िली कैसी भोली भाली और सहज सुन्दरी है।

आकाश के खेलों की तो उपमा ही नहीं मिलती। बादलों के मुण्ड एक से एक नई क्रीड़ा करते हुए अनेक रूप धारण करते हैं। उनकी चपलता देखकर वर्षा में बन्दर भी भीगी बिल्ली बन जाते हैं। कभी वे गाय, बछड़े-से दिखाई देते हैं, कभी हाथी और सिंह-से बन जाते हैं। कभी पहाड़ों-से प्रतीत होते हैं, कभी वन-उपवन-से लगते हैं। कभी मन बहलाते हैं, कभी प्रलय मचाते हैं। उनके पास सब से सुन्दर खिलौना एक है। वह है इन्द्र-धनुष। बस, उनकी उस धनुही में विधाता की चित्रकारी समाप्त हो गई है। इसे देखकर वर्षा के आँगन में फिर और कुछ देखने को नहीं रह जाता। हाँ बिजली की चमक में प्रकृति-सुन्दरी के कङ्कण, और जुगुनुओं के रूप में उसके केश-कलाप के पुष्प गुच्छ भी मनोहारिणी छवि देते हैं।

२९—पढ़ने के आनन्द

बिना किसी उद्देश के पढ़ना पढ़ना नहीं; पढ़ना वही है, जिससे विवेक और विचार बढ़े। इस प्रकार के पढ़ने में जो आनन्द है, वह वाणी के वर्णन का विषय नहीं; वह अनुभव के हृदय की ज्योति है। त्रैलोक्य का सौन्दर्य, और तीनों काल की सम्पदा उसके अन्तर्गत ही रहती है। स्वाध्याय के सुख-लोक में सुर-लोक एक पर्ण-कुटी है। सूर्य, चन्द्र, तारागण उसके प्रकाश-मन्दिर की फुल-झड़ियाँ हैं। उसमें सच्चिदानन्द के सत् और चित् के संयोग में आनन्द का आनन्द है; उसकी विश्व-वाटिका में मानस-हंस का सरोवर है।

एक कोने में बैठकर मनमाने सुख का साधन पढ़ने में मिलता है। जी चाहे तो वाल्मीकि के तपोवन में विचरण कीजिए; जी चाहे तो हल्दीघाटी में प्रताप के प्रताप का उत्कर्ष देखिए। चाहे सूर के पदों पर भ्रमर बनकर मँडराते रहिए; चाहे तुलसी के मानस-सर में डुबकी लगाइए। चाहे व्यास के अति-विक्रम का ध्यान कीजिए। चाहे कालिदास के काव्य-लोक का आनन्द लूटिए। चाहे वेद और उपनिषदों का मनन कीजिए; चाहे गीता के गौरव में गोते लगाइए। चाहे शेक्सपियर की मानव-प्रकृति का विवेचन कीजिए; चाहे मिल्टन की ज्ञान-गरिमा को अवगाहिए। अगणित ग्रन्थों के महोदधि में जितना जितना गहरा पैठिए, उतने ही [illegible]

हाँ खूब हँस-हँसकर बातें करते हैं। जिनके तेज के सामने आँख
हीं उठ सकती, उनके बराबर बैठकर वहाँ वाद-विवाद होता है।
क्षण में बालक, क्षण में युवा, क्षण में वृद्ध, क्षण में पुरुष, क्षण में
स्त्री, जो रूप चाहें धारण कर लें कोई देख ही नहीं सकता। वहाँ
किसी को किसी प्रकार की रोक टोक नहीं; सब को पूर्ण स्वाधीनता
। वहाँ सब प्रकार का समाज है, जैसी रुचि हो चुन लीजिए।
य, विषाद, घृणा, लज्जा क्रोध, करुणा, दया, दान, विनोद, हँसी
ब वहाँ एक ही आँगन में खेलते हैं।

आत्म-परीक्षा का तो पढ़ने में अलभ्य अवसर प्राप्त होता है।
क दूसरे से तुलना करके गुणों के ग्रहण, और दोषों के परित्याग
ी भावना जाग्रत् होती है। आलोचनात्मक दृष्टि से जगत् को
खने का स्वभाव बनता, और बुद्धि का द्वार खुल जाता है। सफलता
ा मार्ग दृष्टि आता, और विफलताओं पर विजय का उत्साह
मड़ता है। जीवों पर दया, लोक की सेवा, जीवन की पवित्रता,
र्म की निष्ठा, ईश्वर में श्रद्धा, पाप से निवृत्ति और धर्म में प्रवृत्ति
भावों का उदय होता है। भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल
ी कल्पना विद्यमान रहती, और मनोवृत्तियों के मनोरञ्जन के
ाथ माया के आवरण में मानसिक शान्ति की झाँकी होने लगती
। उस मौन-लोक के प्राणी बड़े साधु, सुहृद्, उदार और मिलन-

३०-माँ का हृदय

तुम्हारा हृदय कितना कोमल है ! फूल-सा ? नहीं माँ, वह तो ...ों में पला है, उसमें तो कीड़े बसते हैं। मोम-सा ? नहीं माँ ... की मक्खियों का मल है। मक्खन-सा ? नहीं माँ, बिलोते बिलोते ...का तो मन ही मसल दिया गया है, वह शीत से कड़ा और धूप ...ा हो जाता है। फेन-सा ? नहीं माँ, वह तो छूते ही बैठ जाता ... रेशम-सा ? नहीं माँ, वह तो कीड़ों का कफन है। रोम-सा ... माँ, वे तो हवा लगते ही उड़ जाते हैं। राम की गुड़ियों-सा ... माँ, वे तो हाल ही बिला जाती हैं। माँ, तुम्हीं बता दो कैसा ... कैसी हो, बता दो। ऊँ ! हँसती तो हो, बात नहीं बताती।

अच्छा जाने दो। माँ, तुम्हें नींद नहीं आती ? तुम तो ज... तब जगती ही दिखाई देती हो। तुम्हारी गोद नहीं दुखती ... जो मुझे उसमें चढ़ाये ही चढ़ाये फिरती हो। तुम्हें घिन नह... ...ती ? तुम तो मेरे मैले-कुचैले अङ्गों को धोती-पोंछती ही रहती हो ...हारी छाती नहीं पिराती ? तुम तो मुझे काम-धेनु की नाईं स... दूध पिलाती हो। तुम्हें कोई चीज नहीं भाती ? तुम तो स... ही लिए रख छोड़ती हो। तुम्हारा ध्यान और कहीं नहीं जाता ... तो मानों मेरे रोने ही को बैठी बैठी सुनती रहती हो। माँ, तु... ...ो कुछ पीड़ा नहीं होती ? तुम तो मेरे सामने हँसती, मुसका...

जाती, और उसे चूमकर सब कुछ पा जाती हो। मैं तुम्हार
ौना हूँ माँ, और तुम मेरी गोदी।

माँ, तुम मेरी गैया हो, और मैं तुम्हारा बछड़ा। तुम तो प्रेम की
ली हो। माँ, तुम्हारे पलक मेरे बिछौने हैं। तुम गैया-सी भोली
पर मेरी ओर किसी की आँख उठते ही तुम बाघिनी से बढ़क
। दया तुम्हारे घर की भिखारिनी है माँ! तुम्हारे लिए तो मै
अबोध हूँ। कुछ भी कर डालूँ, तुम्हें तैश नहीं आता माँ
मुझे दुधमुँहा ही मानती हो। तुम्हारे लिए मेरा कोई अपराध
राध ही नहीं, तुम सब को सुधारने की आशा रखती हो
हारी ममता अथाह है माँ! उसकी तह में आशा की अनन्त
रा अबाध गति से बहती रहती है।

बहुत से सुहृद् मिलते हैं माँ! पिताजी की आत्मा मुझ में रहती है
त्र मन ही दे देते हैं; सखा सर्वस्व अर्पण करते हैं; सहोदर जीव
जीवन ही मिला देते हैं; पुत्र पुत्री अनुराग की प्रतिमा ही हैं; पर
प्राण ही पति में रहते हैं। परन्तु, तुम्हें कोई नहीं पहुँचते माँ! म
हारे हृदय में हृदय का भी निवास है। हाँ, याद आई माँ!
तो पीछे के सम्बन्धी हैं। मेरे जीवन की पहली साँस तुम्हा
साँस थी। तुमने और मैंने तो एक ही नली के द्वारा महीन
ँस ली है। मेरा तुम्हारा जीव ही एक है माँ! फिर क्यों न तुम्हा

३१—अभ्यास के लिए लेख

१—घर के आनन्द । २—स्वच्छ वायु का उपयोग । ३—गाँव की पाठशाला । ४—छुट्टियाँ । ५—लोहा और उसका उपयोग । ५—समाचार-पत्र । ७—स्कूल के खेल । ८—व्यायाम । ९—हिन्दू त्योहार । १०—भारत की ऋतुएँ । ११—ग्राम और नगर । १२—स्वच्छता । १३—समय-पालन । १४—पर्यटन । १५—गाय । १६—कोई यात्रा वा भ्रमण । १७—ताज महल । १८—किसी महा पुरुष का जीवन । १९—दिल्ली । २०—वसन्त की शोभा । २१—कोई दुर्भिक्ष । २१—वृन्दावन के मन्दिर । २३—साहस । २४—दया । २५—परोपकार । २६—भारत के पशु-पक्षी । २७—संयुक्त प्रान्त के प्रधान नगर । २८—शिकार खेलना । २९—कोई अजायबघर (कौतुकागार) । ३०स्वाधीनता । ३१—आलस्य । ३२—परिश्रम । ३३—फूल चुनना । ३४—पालतू जानवर । ३५—धन का उपयोग । ३६—खेती के औजार । ३७—ऋण लेना । ३८—बाग लगाना । ३९—सरलता । ४०—संतोष । ४१—जूआ ४२—नशा करना । ४३—तम्बाकू । ४४—शराब पीना । ४५—आत्म संयम । ४६—स्वावलम्बन । ४७—गानेवाली चिड़ियाँ । ४८—वायुयान । ४९—कोई आँधी वा तूफान । ५०—हौकी वा फुटबाल ५१—कबड्डी का खेल । ५२—सुसंग-कुसंग । ५३—कोई जलूस । ५४ विद्यार्थियों के कर्तव्य । ५५—छात्रालय में रहने के लाभ और हानिय